CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

16.2

२२६१०

२९६

सम्यक्त्वसार

नरिया, (जि. वाराणसी)

श्री १०५ क्षुल्लक निजानन्द जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या.................. प्राप्ति-संख्या.....................

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम सम्यक्त्वसार

लेखक क्षु० निजानन्द जी

लेनेवाले का नाम	देनेकी तिथि	लेनेवालेका हस्ताक्षर	लौटानेकी तिथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री जैन-सिद्धान्त-ग्रन्थमाला

का

प्रथम पुष्प

सम्यक्त्वसार

लेखक—

श्री १०५ क्षु० निजानन्द जी

(शास्त्रार्थकेसरी, व्याख्यानवाचस्पति)

2-296

प्रकाशक—

मंत्री—जैन-सिद्धान्त-ग्रंथमाला

पहाड़ीधीरज, देहली।

प्रथमबार १०००

फाल्गुण वीर सं० २४७६

मूल्य ।।।)
सजिल्द १)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय वक्तव्य

जैनशासन की सबसे बड़ी विशेषता है पतितको पावन अर्थात् आत्माको परमात्मा बना देना और उसका प्रधान साधन है सम्यग्दर्शन। जैन शास्त्रोंमें इसका पर्याप्त वर्णन है। सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्रकी प्राप्ति मोक्षका राजमार्ग है पर सम्यग्दर्शनके बिना ज्ञान सम्यग्ज्ञान और चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं कहला सकते, वे मिथ्यारूप ही रहते हैं। सम्यग्दर्शन मोक्ष रूपी महलकी प्रथम सीढ़ी, मोक्षरूपी वृक्षकी जड़ तथा संसाररूपी समुद्रसे पार करनेके लिये पतवार सदृश माना गया है। उसके प्राप्त होने पर जीवकी काया पलट होजाती है, जीवन और का और हो जाता है, उसकी दृष्टि और लक्ष्य ही बदल जाता है। अगर चारित्र न हो तो भी सम्यग्दृष्टि जीव संसारमें विशेष रत नहीं होता। वह संसारके अनेक दुःखों से बच जाता है तथा धीरे २ पूर्णज्ञान और चारित्रको भी प्राप्तकर सदाके लिए संसारके बन्धन से मुक्त होजाता है।

आचार्योंने शास्त्रों में इस विषयका अच्छा विवेचन किया है। पर सर्व साधारणके पास न इतना समय है और न इतनी शक्ति और ज्ञान कि उन सब ग्रन्थोंका अध्ययन कर उनमेंसे रत्न निकाल सकें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज भौतिकवाद का युग है और प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को भूलकर संसार चक्रमें अधिकाधिक फंसता जारहा है। ऐसे समयमें आत्माकी शक्ति और स्वभावका सच्चा भान कराके उनके विकासके लिये सरल शब्दोंमें मार्ग प्रदर्शन की अतीव आवश्यकता है।

इस वर्ष जब श्री १०५ क्षुल्लक निजानन्दजी (स्वामी कर्मानन्दजी) पहाड़ी धीरज पर विराजमान थे तब उनसे यह प्रार्थनाकी गई थी। श्री क्षुल्लक जी अनेक धर्मोंके अधिकारी विद्वान, सुप्रसिद्ध वक्ता, अध्यात्म प्रेमी तथा संयमी व्यक्ति हैं। आपने प्रार्थना स्वीकार कर यह ग्रन्थ लिखा है। इसमें विविध आचार्योंके सुप्रसिद्ध ग्रन्थोंसे बहुमूल्य रत्न चुनकर तथा स्थान २ अपनी ओरसे पर्याप्त प्रकाश डालकर प्रकृत विषय को अत्यन्त सुगम और सुबोध बना दिया है। इसके लिये श्री क्षुल्लकजीको हार्दिक धन्यवाद है। इस ग्रन्थमें पाठकों को सम्यग्दर्शन विषयक प्रचुर सामग्री मिलेगी जो ज्ञान विकाश तथा आध्यात्मिक रुचि उत्पन्न करनेमें पर्याप्त सहायक होगी।

ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थके प्रकाशनके साथ ही यहां 'जैनसिद्धान्तग्रन्थमाला' के नामसे एक ग्रन्थमालाकी स्थापना हुई है। एक नियमित योजना बनाकर उसे एक प्रवन्ध समितिके अन्तर्गत चलाया जारहा है। इसका उद्देश्य जैनधर्म के प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुन्दर प्रकाशनकर उन्हें लागत मूल्यपर लोगों तक पहुंचाना और जिनवाणीका प्रचार करना है। इसके कार्यकर्ता सुयोग्य व उत्साही हैं। आशा है कि यह ग्रन्थमाला अवश्य उन्नति करेगी तथा शीघ्र ही अन्य कई उपयोगी ग्रन्थों के प्रकाशनमें समर्थ होगी। इसके संगठनमें जिन महानुभावोंने तन मन धन जिस किसी रूपमें भी सहायता दी है उनको धन्यवाद है। अकलङ्क प्रेसके मालिक श्री पं० अजितकुमारजी शास्त्री ने इस ग्रन्थको इस सुन्दररूपमें प्रकाशित होने में पर्याप्त सहायता दी है इसके लिये ग्रन्थमाला की ओर से मैं उनका भी आभारी हूँ।

अन्तमें अपने पाठकोंसे भी निवेदन करना चाहता हूँ कि वे इस ग्रन्थमालाकी पूर्ण सहायता कर जिनवाणी प्रचारके इस महान् कार्यको सुगम बनावें।

हीरालाल जैन "कौशल"
(साहित्यरत्न, शास्त्री, न्यायतीर्थ)
प्रकाशन मंत्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवीतरागाय नमः

सम्यक्त्वसारः

मङ्गलाचरण

[१]

दासीकृता येन च मोक्षलक्ष्मीः, दूरीकृतं तामसतन्त्रजालम् ।
प्रदर्शितो वा शिवमोक्षमार्गः, वीरेश्वरं तं मनसा नमामि ॥

[२]

प्राप्तो मया पावनतत्वबोधः, येषां प्रसादान्मुनिपुङ्गवान् तान् ।
परोपकारे निरतां च नत्वा सम्यक्त्वसारं कथयामि भक्त्या ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[३]

बहूनि शास्त्राणि विलोक्य भावात्,
निशादिवा तानि विचिन्त्य बुद्ध्या ।
कृत्वा बुधै र्वा सह तत्व-चर्चां,
सम्यक्त्वबोधाय लिखामि किंचित् ॥

[४]

अपारपारः किल शास्त्रसिन्धुः,
पारं न गच्छे दिह मानुषी धी ।
अज्ञानतो वा पतनं प्रमादात्,
किमत्र चित्रं यदि वा भवेन्नः ॥

[५]

अस्त्यात्मा सच्चिदानन्दः स्वानुभूत्यैकगोचरः ।
अशुद्धो व्यवहारेण शुद्धोऽयं निश्चयान्नयात् ॥

[६]

हिरण्यगर्भःसर्वज्ञो ब्रह्माविष्णुमहेश्वरः ।
सर्वाणि यस्य नामानि तस्मै शुद्धात्मने नमः ॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म तत्वका विवेचन ।

जीवः चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः तं हि स्वसमयं जानीहि ।
पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं च तं जानीहि परसमयम् ॥

अर्थ—आत्माकी दो अवस्थायें हैं, एक संसारावस्था तथा दूसरी मुक्तावस्था। इस मुक्तावस्थाको ही परमात्मा सिद्ध, परम-ब्रह्म, आदि नामोंसे कहा जाता है। तथा संसारी आत्माके कर्मोंके तारतम्यसे अनेक भेद हैं, उन सब जीवोंको यहां पर समय कहा गया है। तथा मुक्तोंको स्वसमय कहा है।

इन दोनों अवस्थाओंमेंसे स्वसमय अवस्था अर्थात् शुद्ध-परमात्म-दशा उपादेय है और संसारी दशा हेय है। क्योंकि यह अवस्था इसकी अपनी नहीं है। जब इस आत्माको यह ज्ञान हो जाता है कि यह पर्याय मेरी नहीं है मैं तो इससे भिन्न, सच्चिदानन्द-स्वरूप हूं तब यह वहिर्मुख न होकर अन्तर्वृत्ति हो जाता है। यही इसकी अन्तरात्म-अवस्था है। इस अन्तरात्म-पर्यायसे यह परमात्मपदको प्राप्त कर लेता है। यथा—

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधायतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्—वह सम्यग्दृष्टि, अपनी आत्मामें ही सुख मानता है अतः उसी आनन्दरूप आत्मामें ही रमण करता है तथा उसी दिव्य ज्योतिसे प्रकाशमान होता है। ऐसा योगी उस ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्मरूप जो मोक्षपद उसको प्राप्त कर लेता है। तथा जिनके पापादि दोष नष्ट हो गये हैं जिनके संशय आदि सब विकल्प नष्ट हो गये हैं तथा जिन्होंने मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर लिया है और पूर्ण अहिंसक हैं ऐसे ऋषि अर्थात् सम्यग्दृष्टि मोक्षको प्राप्त होते हैं। यहां श्री शंकराचार्यने ऋषयःका अर्थ 'सम्यग्दर्शिनः' ही किया है। तथा च

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।

—कठोपनिषद्

अर्थात्—इस आत्माको कोई चक्षुसे नहीं देख सकता क्योंकि वह अरूपी है। अतः वह आत्मातो सम्यग्दर्शनसे शुद्ध मनके द्वारा ही जाना जासकता है। जो सम्यग्दृष्टि इस आत्माको परमात्मरूपसे जानते हैं वे तद्रूप होकर मुक्त हो जाते हैं।

श्री शुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णवमें लिखते हैं कि—

इयं मोहमहानिद्रा जगत्त्रय-विसर्पिणी।
यदि क्षीणा तदा क्षिप्रं पिव ध्यानसुधारसम्॥

अर्थात्—यह तीन लोकमें व्यापक महा मोहरूपी निद्रा भंग होगई है तो शीघ्र ही ध्यान रूपी अमृत रसका पान कर। क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहि कालकलैकापि विवेकविकलाशयैः ।
अहो प्रज्ञाधनैर्नेया नृजन्मन्यतिदुर्लभे ॥ ४८ ॥

अर्थात्—यह मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है, इसका बार बार मिलना कठिन है अतः ज्ञानी जनोंका कर्तव्य है कि अज्ञानवश कालका एक क्षण भी न गमायें। आचार्य कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्ररूप जो स्वसमय अर्थात् तद्रूप जो शुद्धात्मा है उसको प्राप्त करनेका प्रयत्न करो क्योंकि एकमात्र वही आत्मतत्व उपादेय है। अभिप्राय यह है कि एक ही आत्माको व्यवहार नयसे दो प्रकारका कहा गया है। योगसारमें लिखा है कि—

एको जीवो द्विधा प्रोक्तः शुद्धाशुद्धव्यपेक्षया ।
सुवर्णमिव लोकेन व्यवहारमुपेयुषा ॥ अधि० ७।२५ ॥

संसारी कर्मणा युक्तो मुक्तस्तेन विवर्जितः ।
अशुद्धस्तत्र संसारी मुक्तः शुद्धः पुनर्मतः ॥ २६ ॥

जिस प्रकार व्यवहारी लोग एक ही सुवर्णको दो प्रकारका कह देते हैं उसी प्रकार यद्यपि जीव पदार्थ एक है, तथापि व्यवहार अपेक्षासे उसको दो प्रकारका कहा गया है। संसारी आत्मा कर्मोंसे युक्त हैं तथा मुक्त कर्मोंसे रहित है। अतः व्यवहारापेक्षासे संसारी अशुद्ध हैं और मुक्त शुद्ध हैं। यदि इन अपेक्षाओंको ओझल कर दिया जाये तो न हम आत्माको बद्ध ही कह सकते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं तथा न अमुक्त ही। इसी अभिप्रायसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि जब यह जीव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्ररूप होता है। उस समय यह स्वसमय होता है तथा जब यह पुद्गलरूप कर्मोंके प्रदेशोंसे संबद्ध रहता है उस समय यह पर समय होता है। श्री जयसेनाचार्यने यहां लिखा है कि—

"तथा हि,—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मनि यद् रुचि रूपं सम्यग्दर्शनं तत्रैव रागादिरहितस्वसंवेदनं ज्ञानं तथैव निश्चलानु-भूति रूपं वीतरागचरित्रमित्युक्तलक्षणेननिश्चय रत्नत्रयेण परिणतजीव-पदार्थं हे शिष्य स्वसमयं जानीहि।

पुद्गलकर्मोपदेशस्थितं च तमेव जानीहि पर सममम्। तद् यथा पुद्गलकर्मोदयेन जनिता ये नारकाद्युपदेशव्यपदेशाः संज्ञाः, पूर्वोक्तनिश्चय रत्नत्रयाभावात् तत्र यदा स्थितो भवत्ययं जीवस्तदात्व तं जीवं परसमयं जानीहोति स्वसमयपरसमय लक्षणं ज्ञातव्यम्।"

अर्थात्—विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभाव-रूप जो निज शुद्ध आत्मा उसमें रुचिरूप जो सम्यग्दर्शन, उसीमें रागादि रहित स्वसंवेदन रूप सम्यग्ज्ञान, उसी प्रकार निश्चलअनुभूति रूप वीतराग चारित्र इस लक्षणरूप निश्चय रत्नत्रयमें स्थित जीव स्वसमय होता है। इस अवस्थासे पूर्वकी सब अवस्थाएं पर-समय रूप हैं।

अनादि काल से यह आत्मा मिथ्यात्व आदिमें फंसा हुआ होनेके कारण अपने निज चिदानन्दैक स्वरूपको भूल रहा है तथा परपदार्थोंमें ही सुख मानकर उन्हींमें तल्लीन हो रहा है। शारीरिक सुख दुःखोंको ही अपने सुख दुःख मान कर हर्ष विषाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। जो व्यक्ति या जो पदार्थ इसके इस सुखाभासमें साधक होते हैं उनको अपना हितकर मानता है और उन्हें संग्रह करता है और उनसे प्रेम करता है। तथा जो इसके इस दुःखका कारण होता है उससे घृणा करता है और उससे दूर रहनेका प्रयत्न करता है। परन्तु आत्म ज्ञान न होनेके कारण इसको यह विचार कभी नहीं होता कि ये सुख और दुःख-पर-पदार्थ जनित नहीं है अपितु मेरे ही मोह-जनित रागद्वेषोंके कारण इन बाह्य पदार्थोंमें मुझे सुख व दुख प्रतीत हो रहें हैं। एवं जैसे २ इस सुखाभासकी साधन-भूत वाह्य सामग्री एकत्रित होती जाती है वैसे २ ही इसकी लालसा भी बढ़ती जाती है और यह तोन लोक की सम्पूर्ण बिभूतिको पाकर भो सन्तुष्ट नहीं होती है।

इसीलिये शास्त्रोंमें कहा है कि—

नवित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः ।

अर्थात् धनादि से मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता। अपितु जिस प्रकार अग्निमें घृत और लकड़ी आदि डालने से अग्नि विशाल रूप धारण करती जाती है उसो प्रकार धनादि से आशा बढ़ती ही जाती है। एक कविने क्या ही अच्छा कहा है—

सब्ज होती ही नहीं यह सर जमीं ।
तुख्मे ख्वाहिश दिलमें तू बोता है क्या ?'

अर्थात् ऐ मूर्ख ! इन आशा रूपी बीजोंको इस मानसिक पटल पर क्यों बिखेर रहा है, इस ऊसर भूमिको तो आज तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसीने फलते फूलते देखा ही नहीं है। अत: यदि तुझे आशाओं को लहलहाते देखना है तो अपनी निज आत्मामें ही इन आशाओं को विलीन कर दे। पुनः तुझे वह आनन्द प्राप्त होगा कि जिसको तूने न कभी देखा और न कभी सुना और न जिसका आज तक कभी रसास्वाद लिया है। वह अनुपम, अलभ्य, अलौकिक, एवं अनिर्वचनीय परमानन्द प्राप्त होगा कि तू इन सांसरिक सुखोंको घृणित व हेय समझने लगेगा। तब तू स्वयं आनन्दका अजस्र अमृतमय स्रोत बन जायेगा, तथा संसारके सम्पूर्ण सन्तप्त प्राणी तेरे दर्शनमात्र से साँसारिक दुखों: से छुटकारा पाकर एक अपूर्व आनन्दका अनुभव करेंगे।

हे मूर्ख ! तू अनन्त शक्ति, अनन्त सुख और अनन्तज्ञानका स्वामी होकर दर-दरका भिखारी बना फिरता है, दूसरोंके सन्मुख दीन हीन वचन कह कर कुछ प्राप्त करनेकी आशा करता है यही तेरा भ्रम है। अरे अनादि कालसे मोह रूपी गाढ़ निद्रामें सोये हुए आत्मन् जाग ! और उस दिव्य ज्योति स्वरूपके दर्शन कर जिसके सन्मुख संसारके समस्त रूप हेय हैं।

इस मोह रूपी शत्रु ने तुझे अपने ही से वंचित कर दिया है है, और अब तू इसके आधीन होकर इस मलीन एवं क्षण-भंगुर और दुःखागार शरीरको अपना आत्मा मान कर अनादि काल से दुःख सागरमें गोते लगा रहा है। अरे अब तो इस मोह रूपी शत्रु का नाश करके अपनेको पहचान और कर्त्ता, कर्म,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण, आदिका विकल्प तज कर अपनेमें आप ही अपने दर्शन कर, फिर तू देखेगा कि जिसकी तू अनादि काल से खोजमें था वह अमृतमय सागर तेरे अन्दर ही कल्लोल कर रहा है कि जिसकी एक लघुतम विन्दु ही सम्पूर्ण जगतके रसों को नीरस कर देती है।

इष्टोपदेशमें आचार्य कहते हैं कि—

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥४९॥

अर्थ—अविद्यारूपी अन्धकारका नाश करनेवाली, परम उत्कृष्ट दिव्यज्ञानमयी आत्मज्योति है। मोक्षअभिलाषियोंका कर्त्तव्य है कि प्रत्येक समय उसीका चिन्तन करें। उसकी जिज्ञासा करें, उसीको सुनें तथा उसीका अनुभव करें तथा उसीका अध्ययन करें।

समाधिशतकमें भी कहा है कि—

तद् ब्रूयात् तत्परान् पृच्छेत तदिच्छेत् तत्परो भवेत्।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ॥५३॥

अर्थात् आत्माकी ही चर्चा करनी चाहिये। उसीके जाननेके लिये अन्योंसे प्रश्न आदि करने चाहिये। उसीकी अनन्य भक्ति करनी चाहिये तथा उसीके ध्यानमें लीन होकर अनुपम परमानन्दका रसास्वाद लेना चाहिये। तथा च—

य आत्माऽपहतपाप्मा सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् जो कर्मादिपापोंसे मुक्त शुद्धात्मा है, उसको जानना चाहिये और उसीकी जिज्ञासा करनी चाहिये।

आत्मा क्यों ज्ञातव्य है यह बतानेके लिए बृहदारण्यकोपनिषद्में एक सुन्दर कथा है।

प्राचीन समयमें याज्ञवल्क्य नामके एक सुप्रसिद्ध आत्मवेत्ता थे। उनकी दो स्त्रियां थीं। एकका नाम था कात्यायनी और दूसरी का नाम था मैत्रेयी, जब याज्ञवल्क्य वृद्ध हुए तब उन्होंने संन्यास लेनेका निश्चय किया। अतः अपनी दोनों स्त्रियोंको बुलाकर अपनी सम्पत्ति बांटनेके लिए कहा, इसपर मैत्रेयीने कहा कि—

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम्।
यदेव भगवान् वेद तदेवमे ब्रूहीति।

जिससे मैं अमर नहीं हो सकती उस धनको लेकर मैं क्या करूंगी। अतः जिसके लिए आप इस सम्पूर्ण सम्पत्तिको त्यागकर संन्यास ले रहे हैं उस अमरतत्वका ही उपदेश मुझे प्रदान करें।

यह सुदृढ़ आत्मरुचि जानकर याज्ञवल्क्यने आत्माका निम्नप्रकारसे कथन किया।

साहोवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति, आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।
न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति, आत्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ।

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति, आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ।

न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति, आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥२।४।५॥

अर्थ,—हे मैत्रेयी ! स्त्रियोंको पति ही अधिक प्रिय होता है, परन्तु विचार कर देख कि क्या पति पतिके लिये प्रिय होता है ? नहीं, अपितु आत्माके लिये पति प्रिय होता है । इसी प्रकार पुत्र भी पुत्रके लिये प्यारा नहीं होता अपितु आत्माके लिये पुत्र प्रिय होता है। यही अवस्था धनकी है। इसी शरीरके लिये शरीर प्रिय नहीं होता किन्तु आत्माके लिये शरीर प्रिय होता है। अधिक क्या जितने भी सांसारिक पदार्थ मन व बुद्धि आदि हैं वे सबही आत्माके लिये प्रिय हैं। अतः जिसके लिये ये सब प्रिय हैं उस आत्मतत्त्वको तू जान।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितं भवति ॥

हे मैत्रेयी ! एक मात्र आत्म-तत्व ही द्रष्टव्य है, वही सुनने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य है, उसीका मनन करना चाहिये, तथा निर्विकल्प समाधिमें लीन होकर आपही अपना आनन्द लेना चाहिये। क्योंकि आत्माके जाननेसे ही सब कुछ जाना जाता है, उसीके मननसे सबका मनन है। और उसीके दर्शनसे सब कुछ देखा जाता है। अतः आत्मा ही ध्येय है आत्मा ही ज्ञेय है व आत्मा ही मेय है। यही ध्याता है, यही ज्ञाता है और यही प्रमाता है। तथा ज्ञान भी यही है ध्यान भी यही है और प्रमाण भी यही है। आचार्य कहते हैं कि—

स कोऽपि परमानन्दो वीतरागस्य जायते।
येन लोके त्रयैश्वर्यमप्यचिन्त्यं तृणायते ॥

उस आत्म-दर्शीको ऐसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है कि उसको यह तीन लोककी सम्पदा भी तृणके समान हेय प्रतीत होती है। तथा च

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो, निशेवितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत। न वर्णयितुं शक्यते तदा गिरा, स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते।

अर्थात्—समाधि द्वारा कर्मोंका नाश करके निर्मल किया है चित्त जिन्होंने उनको जो सुख प्राप्त होता है उसका वर्णन करनेमें वाणी सर्वथा असमर्थ है। अर्थात् न उस सुखका वर्णन किया जा सकता है एवं नहीं मन उसका मनन कर सकता है। तथा न वह बुद्धि-गम्य ही है। उसका अनुभव तो आत्मा स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही करता है। अतः उस परमानन्दकी प्राप्तिके लिये आनन्दके अपार सिन्धु इस आत्माको जानना चाहिये।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो
न विजानीमो। यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्
विदितादथो, अविदितादधि। इति शुश्रम पूर्वेषां ये
नस्तद् व्याचचक्षिरे। —केनोपनिषद्

अर्थात्—उस शुद्धात्म तत्व तक न चक्षु जा सकती है न वाणी, तथा जिस मनपर इतना अभिमान है उस गरीबकी भी वहां तक पहुच नहीं है। अतः मुमुक्षु को किस प्रकार इसका उपदेश दें यह भी हम नहीं जानते। तथा वह बुद्धि गम्य भी नहीं है, जो कुछ जाना गया है उससे वह विलक्षण है, तथा अज्ञात से भी भिन्न है। अर्थात् ज्ञात और अज्ञात से भिन्न है ऐसा हमने गुरु परम्परा से सुना है, जो कि हमारे उपदेशक रहे हैं।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता ॥श्वे० ३०॥
विज्ञातारमरे केन विजानीयात् ॥व ३०।१४॥

अर्थात्—वह सम्पूर्ण ज्ञेयोंका ज्ञाता है परन्तु उसको जानने वाला कोई नहीं। क्योंकि उस सब कुछ जानने वालेको किससे जानें। क्योंकि,

यद्वाचा न भ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥केन. ३०१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्—जिसको वाणी प्रकाशित नहीं कर सकती परन्तु जिसके द्वारा वाणी प्रकाशित होती है, वह आत्मा है। ये शरीर आदि जिनकी तू उपासना करता है वे आत्मा नहीं हैं।

यो वाचामन्तरो यमयति ॥ बृ० ३०३।१।१७ ॥

सा वाग् यया स्वप्ने भाषते। सा हि वक्तुर्वक्ति नित्या वाक् ॥ शांकरभाष्ये ॥

नहि वक्तुवक्ते विंप्र लोपो विद्यते ॥ कृ. ३०४।३।२६॥

अर्थात्—जो वाणी आदिमें रह कर इनका संचालन करता है वह आत्मा है। जिस शक्ति से यह स्वप्नमें बोलता है वह इसकी वाक्‌रूपा नित्य शक्ति है। क्योंकि वक्ताकी वाचन शक्तिका कभी लोप नहीं होता। तथा च

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि। —केन ०३०१।५।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चंक्षूंषि पश्यति। "

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। "

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्। "

अर्थात्—जिस तत्वका मन मनन नहीं कर सकता परन्तु जिसके द्वारा मन मनन करता है वह आत्मा है। जिसको चक्षु नहीं देख सकती परन्तु जिसके द्वारा आंख देखती है वह आत्मा है। जिसको कान नहीं सुन सकते किन्तु जिसके द्वारा कान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनते हैं। वह आत्मा है, जो प्राणों से नहीं जीता अपितु जिससे प्राण जीते हैं वह आत्मा है।

तममेकत्वविभक्तं* दर्शयेहमात्मनः स्वविभिवेन ।
यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्खलितं छलं न गृहीतव्यम् ५

अर्थ—उस दुर्लभतर आत्मैकत्वका मैं कथन करता हूँ। यद्यपि मैं आगम, तर्क, परमगुरूपदेश, स्वानुभूति आदि सम्पूर्ण साधनों द्वारा इस शुद्धात्म तत्वका कथन करूंगा, फिर भी यदि कहीं स्खलन हो जाये तो योगी जनोंका कर्त्तव्य है कि उसको ठीक करलें। किन्तु उसमें छलादिका प्रयोग न करें।

भावार्थ—अभिप्राय यह है कि—शुद्धात्मतत्व एक तो अश्रुत पूर्व है। दूसरी बात यह है कि सर्व साधारणकी रुचिका यह विषय नहीं है तथा च यह तत्व अनिर्वचनीय है अज्ञेय है, अर्थात् मन और बुद्धि आदिकी पहुँच से परे है। एक मात्र स्वानुभूति गम्य है। इतना सब होने पर भी कथन करनेका जो साधन है। वह इतना अपर्याप्त है कि उससे अचिन्त्य निर्विकल्प आत्म तत्वकी तो बात ही क्या है साधारण से साधरण विषय

---

* श्री जय सेनाचार्यने एकत्वविभक्तका अर्थ निम्न प्रकार किया है।

एकत्वविभक्तं अभेदरत्नत्रयपरिणतं मिथ्यात्वरागादि रहितम् परमात्म स्वरूप मित्यर्थः।

अर्थात् यहां एक त्वका अर्थ अभेद रत्नत्रय परिणत तथा विभक्त का अर्थ मिथ्यात्व रागादि-रहित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का भी सर्वांगपूर्ण समीचीन वर्णन करना महान कठिन है। जितनो भी संसारमें भाषायें हैं तथा जितने-मनुष्य हैं वे सब मिलकर किसी भी तत्वका यथार्थ और पूर्ण रूपसे वर्णन नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थितिमें यदि इस स्वानुभव गम्य शुद्धात्म तत्वके कथनमें स्खलन हो जाय तो कुछ भी आश्चर्य नहीं है। जैसे किसीने इमरती खाई, किसीने उससे पूछा कि इमरतीका स्वाद कैसा होता है उसने कहा कि मीठा होता है। उसने पुनः पूछा कि मीठा तो पेड़ा, लाडू, कलाकन्द आदि सभी होते हैं, इनमें से इमरतीका स्वाद किस प्रकारका मीठा होता है। अब इसके पास इसके सिवा कोई उत्तर नहीं है कि इमरतीका मीठापन इन सबसे विलक्षण है। परन्तु उसमें क्या विलक्षणता है, यह बताया नहीं जा सकता। इस विलक्षणताका ज्ञान तो इमरती खाने से ही होगा। बस इसी प्रकार आत्म तत्व मन वचन आदिका विषय नहीं है। अपितु वह तो निर्विकल्प समाधि द्वारा स्वानुभव गम्य है। शास्त्रोंका प्रयोजन तो इतना मात्र है कि इस मनुष्यको आत्मश्रद्धान कराके निर्विकल्प समाधि तक पहुंचा देवे। उस अवस्थामें जो परमानन्दकी प्राप्ति होती है वह तो स्वसंवेद्य ही है। अन्य शास्त्रोंमें भी कहा है।

श्रीमदाचार्य योगीन्दु जी परमात्मप्रकाशमें लिखते हैं—

वेदैः शास्त्रै रिन्द्रियैर्यो जीवोगन्तुं न याति।
निर्मलध्यानस्य यो विषयः स परमात्मा अनादिः ॥२३॥

पं॰ दौलतराम जी टीकामें लिखते हैं कि,—(वेदैः) जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवलीकी दिव्यवाणीसे तथा महामुनियोंके वचनोंसे एवं इन्द्रिय और मन यह शुद्धात्मा जाना नहीं जा सकता। तथा च

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा ।
अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा ।

अर्थात्.—वेद शास्त्रादिका पाण्डित्य उस तत्त्वको नहीं जान सकता। क्योंकि वह नय और प्रमाण आदिका विषय नहीं है। अतः तर्क अथवा बुद्धि से या विज्ञानादि से उसको जाननेका प्रयत्न करनेवाले व्यर्थ ही कष्ट भोगते हैं।

अभिप्राय यह है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, उस अचिन्त्य अज्ञेय, अमेय तत्वका कथन करने लगे हैं जिसका कि वाणीसे वर्णन करना असंभव है, क्योंकि वह वाणीका विषय नहीं है।

फिर भी संसारके उपकारार्थ अपनी सम्पूर्ण शक्ति और वैभव से इसका कथन करेंगे ❀।

अतः उसमें कहीं भूल प्रतीत होने लगे तो उसमें छल ग्रहण न करें,। क्योंकि यह विषय ही महान कठिन और अश्रुत पूर्व है। तथा च—

❀ श्री कुन्दकुन्दाचार्यका वैभव अपार था। अर्थात् वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारंगत तो थे ही, साथ ही जिस भाषामें वेग्रन्थ लिख रहे हैं, उस भाषा पर उनका पूरा आधिपत्य था। तथा दीर्घकाल तक स्वात्मामें लीन होकर स्वयं आत्मानन्दका रसास्वाद लिया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यति ॥गी० २।५३॥

अनेक शास्त्रीय तर्क वितर्क से विक्षिप्त बुद्धि जब समाधि (आत्मामें) अचल दृढ स्थिर हो जायगी, हे अर्जुन उस समय तू योगको प्राप्त होगा । अर्थात् उस समय तुझे आत्माका साक्षात् कार होगा ।

श्री ज्ञानभूषण भट्टारक तत्वज्ञानतरङ्गिणीमें कहते हैं—

कल्पेशनागेशनरेशसंभवं चित्ते सुखं मे सततं तृणायते ।
कुस्त्रीरमास्थानकदेहदेहजात् सदेति चित्रं
मनुतेऽल्पधीः सुखं ॥ १०-६ ॥

भावार्थ—मैंने शुद्ध चिद्‌रूपके सुखको जानलिया है इसलिये मेरे चित्तमें देवेन्द्र, नागेन्द्र और इन्द्रोंके सुख जीर्णतृणके समान दीखते हैं, परन्तु जो अज्ञानी है वह स्त्री, लक्ष्मी, घर, शरीर और पुत्रादिके द्वारा होनेवाले क्षणिक सुखको, जो वास्तव में दुःखरूप है, सुख मान लेता है ।

खसुखं न सुखं नृणां कित्वभिलाषाग्निवेदनाप्रतीकारः ।
सुखमेव स्थितिरात्मनि निराकुलत्वाद्विशुद्धपरिणामात् ॥

भावार्थ—इन्द्रियजन्य सुख, सुख नहीं है, किन्तु जो तृष्णा-रूपी आग पैदा होती है उसकी वेदना का क्षणिक उपाय है । सुख तो आत्मामें स्थित होनेसे होता है, जब परिणाम विशुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हों व निराकुलता हो।

पुरे ग्रामेऽटव्यां नगशिरसि नदीशादिसुतटे।
मठे दर्यां चैत्योकसि सदसि रथादौ च भवने॥
महादुर्गे स्वर्गे पथनभसि लतावस्त्रभवने।
स्थितो मोही न स्यात् परसमयरतः सौख्यलवभाक्॥

भावार्थ—जो मनुष्य मूढ और पर पदार्थोंमें रत हैं वे चाहे नगरमें हों, ग्राममें हों, वनमें हों. पर्वतके शिखरपर हों, समुद्रके तटपर हों, मठ, गुहा, चैत्यालय, सभा, रथ, महल, किलेमें हों, स्वर्गमें हों, भूमि, मार्ग, आकाशमें हों, लतामण्डप व तंबू, आदि किसी भी स्थानपर हों उन्हें निराकुल सुख रंचमात्र भी प्राप्त नहीं हो सकता।

बहून् वारान् मया भुक्तं सविकल्पं सुखं ततः।
तन्नापूर्वं निर्विकल्पे सुखेऽस्तीहा ततो मम॥ १०-१७॥

भावार्थ—मैंने इन्द्रिय जन्य सुखको बारबार भोगा है, वह कोई अपूर्व नही है, वह तो आकुलताका कारण हैं! मैंने निर्विकल्प आत्मीक सुख कभी नहीं पाया उसीकेलिये मेरी इच्छा है।

विषयानुभवे दुःखं व्याकुलत्वात् संतां भवेत्।
निराकुलत्वतः शुद्धचिद्रूपानुभवे सुखं॥ १६-४॥

भावार्थ—इन्द्रियोंके विषयोंके भोगनेमें प्राणियोंको वास्तवमें आकुलताहोनेके कारणसे दुःख ही होता है परन्तु शुद्ध आत्माके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभव करनेसे निराकुलता होती है तब ही सच्चा सुख होता है।

अनन्तवीर्यविज्ञानदृगानन्दात्मकोऽप्यहम् ।
किं न प्रोन्मूलयाम्यद्य प्रतिपक्षविषद्रुमम् ॥ १३-३१ ॥

भावार्थ—मैं अनन्तवीर्य, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत-सुखरूप ही हूँ, मैं अपने प्रतिपक्ष कर्मरूपी विषके वृक्षको आज उखाड़ क्यों न डालूंगा ?

यदक्षविषयरूपं मद्रूपात्तद्विलक्षणम् ।
आनन्दनिर्भरं रूपमन्तर्ज्योतिर्मयं मम ॥ ६४-३२ ॥

भावार्थ—जो जो पदार्थ इन्द्रियोंका विषय है वह मेरे आत्मा के स्वभावसे विलक्षण है। मेरा स्वभाव तो सहजानन्दसे पूर्ण अन्तरङ्गमें ज्ञान ज्योतिमय है।

अतीन्द्रियमनिर्देश्यममूर्तं कल्पनाच्युतं ।
चिदानंदमयं विद्धि स्वस्मिन्नात्मानमात्मना ॥ ६६-३२ ॥

भावार्थ—हे आत्मन्! तू आत्माको आत्मा हीमें आप हीसे जान कि मैं अतीन्द्रिय हूँ, वचनोंसे कहने योग्य नहीं हूं, अमूर्तीक हूँ, कल्पनारहित हूं, व चिदानदमयी हूँ।

निष्कलः करणातीतो निर्विकल्पो निरञ्जनः ।
अनंतवीर्यतापन्नो नित्यानन्दाभिनन्दितः ॥ ७३-४२ ॥

भावार्थ—सिद्धात्मा शरीररहित है, इन्द्रियोंसे रहित है, विकल्प रहित है, कर्ममल रहित है, अनंतवीर्यधारी है, नित्य सहजानंदमें मग्न है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये याता यांति यास्यंति योगिनः शिवसंपदः ।
समासाध्यैव चिद्रूपं शुद्धमानंदमंदिरं ॥ १६-२ ॥

भावार्थ—जो योगी मोक्ष सम्पदाको प्राप्त होचुके होंगे व हो रहे हैं उसमें शुद्धचिद्रूपका ध्यान ही प्रधान कारण है, वही सहजानन्दका घर है।

चिद्रूपः केवलः शुद्ध आनंदात्मेत्यहं स्मरेत्।
मुक्त्यै सर्वज्ञोपदेशः श्लोकार्द्धेन निरूपितः ॥ २२-३ ॥

भावार्थ—'मैं चैतन्यरूप हूं, असहाय हूं, शुद्ध हूं, सहजानंदमय हूं, ऐसा स्मरण कर। मुक्तिके लिये सर्वज्ञका क्या उपदेश है उसे आधे श्लोकमें कहा गया है।

सर्वेषामपि कार्याणां शुद्धचिद्रूपचिंतनं ।
सुखसाध्यं निजाधीनत्वादिहामुत्र सौख्यकृत् ॥१६-४॥

भावार्थ—सर्व ही कार्योंमें शुद्ध चिद्रूपका चिन्तवन सुखसे साध्य है क्योंकि यह अपने ही आधीन है तथा इस चिन्तवनसे इस लोकमें भी सहज सुख होता है और परलोकमें भी होता है।

चिद्रूपोऽहं स मे तस्मात्तं पश्यामि सुखी ततः ।
भवक्षितिर्हितं मुक्तिर्निर्यासोऽयं जिनागमे ॥ ११-६ ॥

भावाथ—मैं शुद्ध चैतन्यरूप हूं इसलिये मैं उसीको देखता हूं उसीसे मुझे सहजसुख प्राप्त होता है। जिनागमका भी यही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निचोड़ है कि शुद्ध चिद्रूपके ध्यानसे संसारका नाश व हितकारी मुक्ति प्राप्त होती है।

चिद्रूपे केवले शुद्धे नित्यानंदमये यदा।
स्वे तिष्ठति तदा स्वस्थं कथ्यते परमार्थतः ॥ १२-६ ॥

भावार्थ—केवल, शुद्ध, नित्य सहजानंदमई शद्ध चिद्रूपस्वरूप जो अपना स्वभाव उसमें जो सदा ठहरता है वही निश्चय से स्वस्थ कहा जाता है।

नात्मध्यानात्परं सौख्यं नात्मध्यानात् परं तपः।
नात्म ध्यानात्परो मोक्षपथः क्वापि कदाचन ॥ ५-८ ॥

भावार्थ—आत्मध्यानके विना और किसी उपायसे उत्तम सहज सुख नहीं हो सक्ता है। आत्मध्यानसे बढकर और कोई तप नहीं है। आत्मध्यानसे बढ़कर कहीं व किसी कालमें कोई मोक्ष मार्ग नहीं है।

स्वस्मिन्सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥ ३४॥

भावार्थ—आत्माका सच्चा गुरु अपना आत्मा ही है, अपनेहीमें अपना भला करनेकी इच्छा होती है। आप ही अपने हितको जानता है व आप ही अपनेको हित साधनमें प्रेरणा करता है।

श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहेष्वात्मधिया जाताः पुत्रभार्यादिकल्पनाः ।
सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा हतं जगत् ॥ १४ ॥

भावार्थ—शरीरको अपना माननेसे ही पुत्र, स्त्री आदिकी मान्यताएं हो जाती हैं इसलिये अज्ञानी उन्हीं स्त्री पुत्रादिको अपना मानता हुआ नष्ट होरहा है ।

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नापि मुञ्चति ।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥ २० ॥

भावार्थ—जो आत्मासे भिन्न है, वह ग्रहण करने योग्य नहीं है, उसे यह कभी ग्रहण नहीं करता है। जो इसका स्वभाव है, जिसे यह ग्रहण किये हुए हैं उसे यह कभी छोड़ता नहीं है । जो सर्वको सर्वथा जानता है और स्वानुभवगम्य है वही मैं हूं ।

येनात्मनाऽनुभूयेऽहमात्मनैवात्मनात्मनि ।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः ॥ २३ ॥

भावार्थ—जिस स्वरूपसे मैं अपनेमें अपने द्वारा अपनेको अपने समान ही अनुभव करता हूं वही मैं हूं । न मैं पुरुष हूं, न स्त्री हूं, न नपुंसक हूं, न दो हूं, न मैं बहुवचन हूं ।

यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः ।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥ २४ ॥

जिस स्वरूपके न जाननेसे मैं सोया हुआ था व जिस स्वरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के जाननेसे मैं जाग उठा यह मेरा स्वरूप इन्द्रियगोचर नहीं है, कथन योग्य नहीं है। मात्र मैं अपनेसे ही अनुभवगोचर हूं।

क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न मे शत्रु न च प्रियः॥ २५॥

भावार्थ—जब मैं निश्चयसे अपने ज्ञान स्वरूपको अनुभव करता हूं तब मेरे रागादिभाव नाश होजाते हैं इसलिये इस जगतमें न कोई मेरा शत्रु है, न कोई मेरा मित्र है।

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः॥ २६॥

भावार्थ—यह जगत् मेरे सच्चे शुद्ध स्वरूपको देखता ही नहीं है, इसलिये न मेरा शत्रु हो सक्ता है न मित्र। तथा जो ज्ञानी मेरे शुद्ध स्वरूपको देखता है वह भी मेरा शत्रु या मित्र नहीं हो सक्ता है।

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥३१॥

भावार्थ—जो कोई परमात्मा है वह मैं हूं तथा जो मैं वही परमात्मा स्वरूप है। इसलिये मैं ही अपनी आराधना करता हूं। और किसकी सेवा करूं यही सत्य बात है।

यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तः पश्यामि सानंन्दं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम् ॥ ५१ ॥

भावार्थ—जो कुछ मैं इन्द्रियोंसे देखता हूं वह मेरा नहीं है। जब मैं इंद्रियोंको रोककर अपने भीतर देखता हूं तो वहां परमानन्दमई उत्तम ज्ञान ज्योतिको पाता हूं, वही मैं हूं।

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः॥ ७५ ॥

भावार्थ—यह आत्मा आप ही अपनेको संसारमें भ्रमण कराता है व आप ही अपनेको निर्वाणमें लेजाता है। इसलिये परमार्थसे आत्माका गुरु आत्मा ही है, और कोई गुरु या रक्षक नहीं है।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनमें कहते हैं—

शरणमशरणं वा बन्धमूलं
चिरपरिचितदारा द्वारमापद्गृहाणाम्।
विपरिमृशतपुत्राः शत्रवः सर्वमेतत्
त्यजत भजत धर्मं शर्म्मकामाः॥ ६० ॥

भावार्थ—यह तेरा घर तुझे मरणादि आपत्तियोंसे बचा नहीं सक्ता; ये तेरे बांधव तेरे स्नेह पाशमें बांधनेवाले हैं, दीर्घ कालकी परिचित स्त्री आपदाओंके घरका द्वार है; ये तेरे पुत्र हैं, वे भी तेरी आत्माके शत्रु हैं। इन सर्वसे मोह छोड़। यदि तू सहज सुखको चाहता है तो निर्मल धर्मका सेवन कर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्कृत्यं किमिहेन्धनैरिव धनैराशाग्निसंधुक्षणैः, ।
सम्बन्धेन किमङ्ग शश्वदशुभैः सम्बन्धिभिर्बन्धुभिः ।
किं मोहाहिमहाबिलेन सदृशा देहेन गेहेन वा ।
देहिन् याहि सुखाय तु सममभुं मा गाः प्रमादं मुधा ६१

भावार्थ—हे प्राणी ! तेरे पास यह जो धन है सो आशारूपी अग्निको बढ़ानेके लिये इंधनके समान है; तथा हे भव्य ! तेरे सम्बंधी बंधुओंसे तुझे क्या जिनके निमित्तसे सदा तू अशुभमें प्रवृत्ति करता है, तथा यह देहरूपी घर, मोहरूपी सर्पका बिल है, इससे भी क्या ! तू इन सबसे स्नेह छोड़ और एक समताभावको भज उसीसे तुझे सुख होगा, प्रमाद मत कर ।

अकिञ्चनोऽहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः ।
योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः ॥ ११० ॥

भावार्थ—मेरा कोई नहीं है, मैं अकेला हूँ ऐसी भावना कर, इसीसे तू तीन लोकका स्वामी होजायगा । यह योगियोंके जाननेलायक भेद तुझे कहा गया है । इसीसे परमात्माका स्वरूप प्रगट होता है ।

ममेदमहमस्येति प्रीतिरीतिरिवोत्थिता ।
क्षेत्रे क्षेत्रीयते यावत्तावत का सा तपःफले ॥२४२॥

भावार्थ—यह शरीर मेरा और मैं इसका, यह प्रीति 'ईति' या अकस्मात् टीड़ीदल, मूषकदल आदिके समान उपद्रवकी करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाली है। जबतक शरीरमें आत्मा मोहित है तबतक तपके फलकी आशा क्या! अर्थात् तबतक तपसे मोक्ष पानेकी आशा करनी वृथा है।

मामन्यमन्यं मां मत्वा भ्रान्तो भ्रान्तौ भवार्णवे।
नान्योऽहमहमेवाहमन्योऽन्योऽन्योऽहमस्ति न ॥२४३॥

भावार्थ—भरम बुद्धिके होने पर तूने अपनेको शरीररूप जाना और कायादिकको अपना स्वभाव जाना। इस विपरीत ज्ञानसे तू संसाररूपी समुद्रमें भ्रमण करता रहा। अब तू यह जान कि मैं पर-पदार्थ नहीं हूँ, मैं मैं ही हूँ, पर पर ही हैं उनमें मैं नहीं, तथा वह मैं नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, और सब मुझसे भिन्न हैं।

क्षीरनीरवदभेदरूपतस्तिष्ठतोरपि च देहदेहिनोः।
भेद एव यदि भेदवत्स्वलं बाह्यवस्तुषु वदात्र का कथा ॥२५३॥

भावार्थ—जिस देहके साथ इस जीवका दूध पानीके समान सम्बन्ध चला आरहा है वह देह ही जब जीवसे भिन्न है तब और बाहरी चेतन व अचेतन पदार्थोंकी क्या कथा? वे तो अपनेसे भिन्न ही हैं। तैजस व कार्मण शरीर भी जीवका नहीं है।

तप्तोऽहं देहसंयोगाज्जलं वाऽनलसंगमात्।
इह देहं परित्यज्य शीतीभूताः शिवैषिणः ॥२५४॥

भावार्थ—ज्ञानी विचारता है कि मैं इस देहके संयोगसे उसी तरह दुःखी रहा जैसे अग्निके संयोगसे पानी संतापित होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीलिये कल्याणके अर्थी साधुओंने देहका ममत्व छोड़कर शांति लाभ किया।

अजातोऽनश्वरोऽमूर्त्तः कर्ता भोक्ता सुखी बुधः।
देहमात्रो मलैर्मुक्तो गत्वोर्ध्वमचलः प्रभुः ॥२६६॥

भावार्थ—यह आत्मा कभी पैदा हुआ नहीं इससे अजन्मा है, कभी नाश नहीं होगा इससे अविनाशी है, अमूर्तीक है, अपने स्वभावोंका कर्ता व अपने सहज सुखका भोक्ता है, परम सुखी है, ज्ञानी है, शरीर-मात्र आकारधारी है, कर्ममलोंसे रहित लोकाग्र जाकर ठहरता है, निश्चल है तथा यही प्रभु है।

श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

तथा हि चेतनोऽसंख्यप्रदेशो मूर्तिवर्जितः।
शुद्धात्मा सिद्धरूपोऽस्मि ज्ञानदर्शनलक्षणः ॥१४७॥

भावार्थ—मैं चैतन्य हूं, लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी हूं, अमूर्तीक, शुद्धात्मा सिद्ध समान हूं, व मेरा ज्ञानदर्शन लक्षण है।

नान्योऽस्मि नाहमस्त्यन्यो नान्यस्याहं न मे परः।
अन्यस्त्वन्योऽहमेवाहमन्योन्यस्याहमेव मे ॥ १४८ ॥

भावार्थ—अन्य मैं नहीं हूं, मैं अन्य नहीं हूं, न मैं अन्यका हूं, न अन्य मेरा है। अन्य है सो अन्य है, मैं मैं हूं, अन्य अन्य का है, मैं ही मेरा हूं। भावार्थ—आत्मा सबसे भिन्न है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यच्छरीरमन्योऽहं चिदहं तदचेतनं ।
अनेकमेतदेकोऽहं क्षयीदमहमक्षयः ॥ १४६ ॥

भावार्थ—शरीर जुदा है मैं जुदा हूं, मैं चेतन हूं शरीर अचेतन जड़ है। शरीर अनेक परमाणुओंसे रचा गया है, मैं एक अखंड हूं। शरीर नाशवंत है, मैं अविनाशी हूँ।

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता द्रष्टा सदाप्युदासीनः ।
स्वोपात्तदेहमात्रस्ततः पृथग्गगनवदमूर्त्तः ॥ १५३ ॥

भावार्थ—मैं सत् द्रव्य हूं, चेतन स्वरूप हूं, ज्ञाता द्रष्टा हूं, सदा ही उदासीन हूं। अपने प्रति देहके आकार हूं, तो भी आकाशके समान देहसे जुदा हूँ।

श्री अमृतचंद्राचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहते हैं—

अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जितः स्पर्शगंधरसवर्णैः ।
गुणपर्ययसमवेतः समाहितः समुदयव्ययध्रौव्यैः ॥९॥

भावार्थ—यह आत्मा चैतन्य स्वरूप है, स्पर्श, रस, गंध वर्णसे रहित ज्ञानादि गुण व उनकी शुद्ध पर्यायोंको रखनेवाला है।

श्री कुलभद्र आचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

ज्ञानदर्शनसम्पन्न आत्मा चैको ध्रुवो मम ।
शेषा भावाश्च मे बाह्या सर्वे संयोगलक्षणाः ॥२४९॥
संयोगमूलजीवेन प्राप्ता दुःखपरम्परा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मात्संयोगसम्बंधं त्रिविधेन परित्यजेत् ॥२५०॥

भावार्थ—मेरा आत्मा ज्ञानदर्शन स्वभावसे पूर्ण है, एक है, अविनाशी है। और सर्व रागादि भाव मेरे स्वभावसे बाहर कर्म के संयोगसे हुए हैं। शरीर और कर्मके संयोगसे जीव बराबर दुःख उठा रहे हैं, इसलिये इस संयोग सम्बन्धको मन, वचन, कायसे मैं त्यागता हूँ।

श्री पद्मनंदि मुनि एकत्वसप्तति में कहते हैं—

अजमेकं परं शान्तं सर्वोपाधिविवर्जितम् ।
आत्मानमात्मना ज्ञात्वा तिष्ठेदात्मनि यः स्थिरः ॥१८॥
स एवामृतमार्गस्य स एवामृतमश्नुते ।
स एवार्हन् जगन्नाथः स एव प्रभुरीश्वरः ॥१९॥

भावार्थ—जो कोई अपने आत्माको अजन्मा, एक अकेला, परम पदार्थ, शांत स्वरूप, सर्व रागादि उपाधिसे रहित, आत्मा हीके द्वारा जानकर आत्मामें स्थिर होता है वही मोक्षमार्गमें चलनेवाला है, वही आनन्दरूपी अमृतको भोगता है, वही पूज्यनीय, वही जगतका स्वामी, वही प्रभु, वही ईश्वर है।

विकल्पोर्मिभरत्यक्तः शान्तः कैवल्यमाश्रितः ।
कर्माभावे भवेदात्मा वाताभावे समुद्रवत् ॥२६॥

भावार्थ—यह आत्मा कर्मोंके छूट जाने पर सर्व विकल्परूपी तरंगोंसे रहित, शांत व अपने केवलज्ञानादि स्वभावमें ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थिर होजाता है जैसा पवनके संचार विना समुद्र स्थिर रहता है।

संयोगेन यदा यातं मत्तास्तत्सकलं परम् ।
तत्परित्यागयोगेन मुक्तोऽहमिति मे मतिः ॥२७॥

भावार्थ—जो जो वस्तु या अवस्था परके संयोगसे आई है वह सब मुझसे भिन्न है उस सबको त्याग देनेसे मैं मुक्त ही हूँ, ऐसी मेरी बुद्धि है; ऐसा ज्ञानी विचारता है।

क्रोधादिकर्मयोगेऽपि निर्विकारं परं महः ।
विकारकारिभिर्मेघैर्न विकारि नभो भवेत् ॥३५॥

भावार्थ—क्रोधादि कर्मोंके संयोग होनेपर भी वह उत्कृष्ट आत्मज्योति विकारी नहीं होती है, जैसे विकार करनेवाले मेघोंसे आकाश विकारी नहीं होता है, ऐसा निश्चय आत्माका स्वरूप है।

तदेकं परमं ज्ञानं तदेकं शुचि दर्शनम् ।
चारित्रं च तदेकं स्यात् तदेकं निर्मलं तपः ॥३६॥

भावार्थ—शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा है, सो ही उत्कृष्ट ज्ञान है, सो ही पवित्र सम्यग्दर्शन है, सो ही एक निर्मल चारित्र है, वही एक निर्मल तप है।

नमस्यञ्च तदेवैकं तदेवैकञ्च मंगलम् ।
उतमञ्च तदेवैकं तदेव शरणं सताम् ॥४०॥

भावार्थ—वही चैतन्य स्वरूप आत्मा नमस्कार करने योग्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, वही एक मंगल है, वही एक उत्तम पदार्थ है, सज्जनोंके लिये वही एक शरणका स्थान है।

तदेवैकं परं तत्त्वं तदेवैकं परं पदम् ।
भव्याराध्यं तदेवैकं तदेवैकं परं महः ॥४४॥

भावार्थ—चिदानंद स्वरूप आत्मा है सो ही एक उत्कृष्ट तत्त्व है, सो ही एक परम पद है, सो ही भव्य जीवोंके द्वारा आराधने योग्य है, सो ही एक परम ज्योति है।

संसारघोरघर्मेण सदा तप्तस्य देहिनः ।
यन्त्रधारागृहं शान्तं तदेव हिमशीतलम् ॥४७॥

भावार्थ—संसाररूपी आतापसे सदा तप्तायमान प्राणीके लिये वह चिदानंद स्वरूप आत्मा है, सो ही हिमालयके समान शीतल यंत्रधारागृह है अर्थात् फवारोंका घर है।

तदेव महती विद्या स्फुरन्मन्त्रस्तदेव हि ।
औषधं तदपि श्रेष्ठं जन्मव्याधिविनाशनम् ॥४६॥

भावार्थ—चिदानंद स्वरूप आत्मा है, सो ही महान विद्या है, सो ही प्रकाशमान मंत्र है। तथा वही संसाररूपी रोगके नाश करनेवाली औषधि है।

अहं चैतन्यमेवैकं नान्यत्किमपि जातुचित् ।
सबन्धोऽपि न केनापि दृढपक्षो ममेदृशः ॥५४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—ज्ञानी विचारता है कि मैं एक चैतन्यस्वरूप हूँ और कोई कदापि नहीं हूँ, मेरा किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, मेरा ऐसा दृढ़ निश्चय है।

अक्षयस्याक्षयानन्दमहाफलभरश्रियः।
तदेवैकं परं बीजं निःश्रेयसलसत्तरोः ॥ ५०॥

भावार्थ—यह ज्ञानानंदरूप आत्मा ही अविनाशी और अनंत सहज सुखरूपी फलको देनेवाले मोक्षरूपी वृक्षका बीज है।

शुद्धं यदेव चैतन्यं तदेवाहं न संशयः।
कल्पनयानयाप्येतद्धीनमानन्दमन्दिरम् ॥ ५२ ॥

भावार्थ—यह शुद्ध चैतन्य है सो ही मैं हूं, कोई संशयकी बात नहीं है। वह सर्व कल्पनामय नयोंसे रहित है व सहज आनन्दका मन्दिर है।

साम्यं सद्बोधनिर्माणं शश्वदानन्दमन्दिरम्।
साम्यं शुद्धात्मनोरूपं द्वारंमोक्षैकसद्मनः ॥ ६७ ॥

भावार्थ—समताभाव ही सम्यग्ज्ञानको रचनेवाला है। समताभाव ही सहजानन्दका अविनाशी मंदिर है। समताभाव शुद्धात्माका स्वभाव है। यह मोक्ष महलका एक द्वार है।

श्रीशुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अत्यक्षं विषयातीतं निरौपम्यं स्वभावजम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविच्छिन्नं सुखं यत्र स मोक्षः परिपठ्यते ॥ ४-८ ॥

भावार्थ—जहां अतीन्द्रिय, इन्द्रियोंके विषयोंसे रहित, अनुपम, स्वाभाविक, अविनाशी सहज सुख है वही मोक्ष कहा गया है।

नित्यानन्दमयं शुद्धं चित्स्वरूपं सनातनम् ।
पश्यत्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमव्ययम् ३५-१८

भावार्थ—मैं नित्य सहजानन्दमय हूं, शुद्ध हूं चैतन्यस्वरूप हूं, सनातन हूं, परम ज्योति-स्वरूप हूं, अनुपम हूं, अविनाशी हूं, ऐसे ज्ञानी अपने भीतर अपनेको देखता है।

यत्सुखं वीतरागस्य मुनेः प्रशमपूर्वकम् ।
न तस्यानन्तभागोऽपि प्राप्यते त्रिदशेश्वरैः ॥३-२१॥

भावार्थ—वीतरागी मुनिके शांतभाव-पूर्वक जो सहज सुख प्राप्त होता है उसका अनंतवां भाग भी सुख इन्द्रोंको नहीं मिलता।

स कोऽपि परमानन्दो वीतरागस्य जायते ।
येन लोकत्रयैश्वर्यमप्यचिन्त्यं तृणायते ॥ १८-२३ ॥

भावार्थ—वीतरागी महात्माको ऐसा कोई परमानन्द उत्पन्न होता है जिसके सामने तीन लोकका अचिंत्य ऐश्वर्य भी तृणके समान भासता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्यैवाविचलं सौख्यं तस्यैव पदमव्ययम् ।
तस्यैव बंधविश्लेषः समत्वं यस्य योगिनः ॥ १८-२४॥

भावार्थ—जिस योगीके रागद्वेषसे रहित समताभाव होता है उसीको अविचल सुख, अविनाशीपद तथा कर्मबन्धसे छुटकारा मिल जाता है।

सतताभ्यस्तभोगानामप्यसत्सुखमात्मजम् ।
अप्यपूर्वं सदित्यास्था चित्ते यस्य स तत्ववित् ॥१५०॥

भावार्थ—वही तत्वज्ञानी है, जिसके चित्तमें यह श्रद्धा है कि निरन्तर अभ्यासमें आए हुए इन्द्रिय भोगोंका सुख असत्य है, किंतु आत्मासे उत्पन्न सहज सुख अपूर्व है।

श्रीपद्मनन्दि मुनि एकत्वसप्ततिमें कहते हैं—

सम्यग्दृग्बोधचारित्रं त्रितयं मुक्तिकारणम् ।
मुक्तावेव सुखं तेन तत्र यत्नो विधीयताम् ॥ १३ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता ही मोक्षका मार्ग है मुक्तिमें ही अनंत सहज सुख है इसलिये मुक्तिका यत्न करना चाहिये।

अजमेकं परं शान्तं सर्वोपाधिविवर्जितम् ।
आत्मानमात्मना ज्ञात्वा तिष्ठेदात्मनि यः स्थिरः १८
स एवामृतमार्गस्सथः एवामृतमश्नुते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स एवार्हन् जगन्नाथः स एव प्रभुरीश्वरः ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो कोई जन्म-रहित, एक-स्वरूप, उत्कृष्ट, शांत, व सर्व रागादिकी उपाधि रहित आत्माको आत्माके द्वारा जानकर आत्मामें स्थिर होजाता है वही सहजानंदमई मोक्षमार्गमें चलनेवाला है, वह सहजानन्दमई अमृतको पीता है, वही अर्हंत है, वही जगन्नाथ है, वही प्रभु है, वही ईश्वर है।

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः,
तत्र ज्ञानेन किं ज्ञाते दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम् ॥ २० ॥

भावार्थ—यह उत्कृष्ट आत्मारूपी तेज है; वह केवलज्ञान, केवलदर्शन, सहजानन्द स्वभावका धारी है। जिसने उसको जान लिया उसने क्या नहीं जाना, जिसने उसको देख लिया उसने क्या नहीं देखा, जिसने उसको सुना उसने क्या नहीं सुना।

कर्तव्योऽध्यसायः सदनेकांततातात्मकेषु तत्त्वेषु ।
संशयविपर्ययानध्यवसायविवक्तमात्मरूपं तत् ॥३५॥

भावार्थ—व्यवहार नयसे सत्‌रूप व अनेक धर्मस्वरूप तत्त्वोंको संशय, विपर्यय व अनध्यवसायरहित जानना चाहिये। यही सम्यग्ज्ञान है। निश्चयनयसे यह सम्यग्ज्ञान आत्माका स्वरूप है।

ग्रंथार्थोभयपूर्णं काले विनयेन सोपधानं च ।
बहुमानेन समन्वितमनिन्हवं ज्ञानमाराध्यम् ॥ ३६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानको आठ अंग सहित सेवन करना चाहिये। (१) ग्रन्थशुद्धि–शुद्ध पढ़ना (२) अर्थशुद्धि-अर्थ शुद्ध करना, (३) उभय शुद्धि–शब्द व अर्थ शुद्ध पढ़ना, (४) कालाध्ययन–ठीक समय पर पढ़ना, (५) विनय, (६) उपधान–धारणा सहित पढ़ना, (७) बहुमानेन समन्वित–बहुतआदरसे पढ़ना, (८) अनिह्नव-गुरुको व ज्ञानको न छिपाना।

येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥२१३॥

भावार्थ—जितने अंशमें किसीके परिणाममें सम्यग्ज्ञान होता है उतने अंशमें कर्मका बन्ध नहीं होता है किन्तु जितने अंशमें राग होता है उतने अंशमें कर्मका बन्ध होता है। सम्यग्ज्ञान बन्धका कारण नहीं है, बन्धका कारण औदयिक भाव रागद्वेष मोह है।

श्री अमृतचंद्राचार्य तत्वार्थसारमें कहते हैं—

वाचनापृच्छनाम्नायस्तथा धर्मस्य देशना।
अनुप्रेक्षा च निर्दिष्टः स्वाध्यायः पंचधा जिनैः १६-७
वाचना सा परिज्ञेया यत्पात्रे प्रतिपादनम्।
ग्रन्थस्य वाथ पद्यस्य तत्वार्थस्योभयस्य वा ॥१७-७॥
तत्संशयापनोदाय तन्निश्चयबलाय वा।
परं प्रत्यनुयोगाय पृच्छनां तद्विदुर्जिनाः ॥ १८-७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आम्नायः कथ्यते घोषो विशुद्धं परिवर्तनम् ।
कथाधर्माद्यनुष्ठानं विज्ञेया धर्मदेशना ॥ १९-७ ॥
साधोरधिगतार्थस्य योऽभ्यासो मनसा भवेत् ।
अनुप्रेक्षेति निर्दिष्टः स्वाध्यायः स जिनेशिभिः २०-७

भावार्थ—शास्त्रोंका स्वाध्याय व्यवहार सम्यग्ज्ञान है, सो स्वाध्याय पांच प्रकार जिनेन्द्रोंने कहा है। बाचना, पृच्छना, आम्नाय, धर्मदेशना, अनुप्रेक्षा। किसी ग्रन्थका व उसके पद्यका तथा उसके अर्थका या दोनोंका दूसरे पात्रको सुनाना या स्वयं पढ़ना वाचना है। संशय दूर करनेको, पदार्थका निश्चय करनेको व दूसरोंको समझानेके लिये जो पूछना उसे जिनोंने पृच्छना कहा है। शुद्ध शब्द व अर्थको घोखकर कंठ करना आम्नाय कहा जाता है। धर्मकथा आदिका उपदेश करना धर्म देशना है। मनके द्वारा वार वार पदार्थका चिन्तन अनुप्रेक्षा है।

न मुह्यति न संशेते न स्वार्थानध्यवस्यति ।
न रज्यते न च द्वेष्टि किंतु स्वस्थः प्रतिक्षणं ॥२३७॥

भावार्थ—अरहंत व सिद्ध परमात्मा घाति- कर्मोंके क्षय होनेपर न तो किसीपर मोह करते हैं, न संशय किसी बातमें करते हैं, न उनके भीतर अनध्यवसाय (ज्ञानमें प्रमाद) है, न वह राग करते हैं न द्वेष करते हैं। किन्तु सदा प्रतिक्षण अपने ही शुद्ध स्वरूपमें स्थित हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिकालविषयं ज्ञेयमात्मानं च यथास्थितं ।
जानन् पश्यंश्च निःशेषमुदास्ते स तदा प्रभुः २३८

भावार्थ—वे केवलज्ञानी परमात्मा अपने आत्माको तथा तीन कालके ज्ञेय पदार्थोंको जैसा उनका स्वरूप है वैसा पूर्णपने जानते देखते हुए वीतरागी रहते हैं।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहते हैं—

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम् ।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥ ५ ॥

भावार्थ—निश्चयनय वह है जो सत्यार्थ मूल पदार्थको कहे। व्यवहारनय वह है जो असत्यार्थ पदार्थको कहे। प्रायः सर्व ही संसारी प्राणी निश्चयसे कथन-योग्य सत्यार्थ वस्तुके ज्ञानसे बाहर होरहे हैं।

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्वेन भवति मध्यस्थः ।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः ॥८॥

भावार्थ—जो कोई निश्चय व व्यवहारनय दोनोंको जानकर मध्यस्थ होजाता है वही शिष्य जिनवाणीके उपदेशका पूर्ण फल पाता है।

सम्यग्ज्ञानं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं वदन्ति जिनाः ।
ज्ञानाराधनमिष्टं सम्यक्त्वानन्तरं तस्मात् ॥ ३३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवन्तोंने सम्यग्ज्ञानको कार्य तथा सम्यग्दर्शनको कारण कहा है। इसलिये सम्यग्दर्शनके पीछे ज्ञानकी आराधना करना उचित है।

कारणकार्यविधानं समकालं जायमानयोरपि हि।
दीपप्रकाशयोरिव सम्यक्त्वज्ञानयोः सुघटम् ॥३४॥

भावाथ—यद्यपि सम्यग्दर्शनके साथ हो सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होती है उसीतरह, जैसे दीपकसे प्रकाश होता है तो भी जैसे दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है, वैसे सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान काथ है।

यावच्चेतसि बाह्यवस्तुविषयः स्नेहः स्थिरो वर्तते,
तावन्नश्यति दुःखदानकुशलः कर्मप्रपंचः कथं।
आर्द्रत्वे वसुधातलस्य सजटाः शुष्यंति किं पादपा,
भृज्जत्तापनिपातरोधनपराः शाखोपशाखान्विताः ॥६६॥

भावाथ—जबतक तेरे मनमें बाहरी पदार्थोंके संबंधमें राग भाव दृढ़तासे मौजूद है तबतक तेरे किस तरह दुःखकारी कर्म नाश होसकते हैं। जब पृथ्वी पानीसे भीगी हुई है तब उसके ऊपर सूर्यतापके रोकनेवाले अनेक शाखाओंसे मंडित जटाधारी वृक्ष कैसे सूख सकते हैं।

रामाः पापाविरामास्तनयपरिजना निर्मिता बह्वनर्था,
गात्रं व्याध्यादिपात्रं जितपवनजवा मूढलक्ष्मीरशेषा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं रे दृष्टं त्वयात्मन् भवगहनवने भ्राम्यता सौख्यहेतु-
र्येन त्वं स्वार्थनिष्ठो भवसि न सततं बाह्यमत्यस्य सर्वं ९८

भावार्थ—हे मूढ ! ये स्त्रियां पापवर्द्धक अहितकारी हैं, ये पुत्र परिजन बहुत अनर्थके कारण हैं। यह शरीर रोग शोकसे पीड़ित है। यह संपूर्ण संपदा हवासे अधिक चंचल है। इस संसाररूपी भयानक वनमें हे आत्मा ! तूने क्या देखा है जिससे तू सर्व बाहरी पदार्थोंको छोड़कर अपने आत्महितमें सदाके लिये लीन नहीं होता है ?

सकललोकमनोहरणक्षमाः करणयौवनजीवितसंपदः ।
कमलपत्रपयोलवचञ्चलाः किमपि न स्थिरमस्ति
जगत्त्रये ॥ १०९ ॥

भावार्थ—सर्व जनके मनको हरनेवाली इन्द्रियां, युवती, जीतव्य व संपदाएं उसी तरह चंचल हैं जैसे कमलके पत्तेपर पड़ी हुई पानीकी बूंद चंचल है। इन तीनों लोकोंमें कोई भी पर्याय स्थिर नहीं रह सकती।

जननमृत्युजरानलदीपितं जगदिदं सकलोऽपि विलोकते ।
तदपि धर्ममतिं विदधाति नो रतमना विषयाकुलितो
जनः ॥ ११८ ॥

भावार्थ–यह सर्व जगत जन्म, मरण, जराकी अग्निसे जल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहा है, ऐसा देखते हुए भी यह विषयोंकी दाहसे आकुलित प्राणी उनमें मनको लीन करता हुआ धर्मसाधनमें बिलकुल बुद्धिको नहीं लगाता है।

श्री शुभचंद्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

चतुर्गतिमहावर्ते दुःखवाडवदीपिते ।
भ्रमन्ति भविनोऽजस्रं वराका जन्मसागरे ॥ १ ॥

भावार्थ—चार गतिरूपी महान भंवरवाले तथा दुःखरूपी वडवानलसे प्रज्वलित इस संसाररूपी समुद्रमें जगतके दीन प्राणी निरंतर भ्रमा करते हैं।

रूपाण्यनेकानि गृह्णाति त्यजत्यन्यानि सन्ततम् ।
यथा रंगेऽत्र शैलूषस्तथायं यन्त्रवाहकः ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे नृत्यके अखाड़ेमें नृत्यकार अनेक भेषोंको धारता है और छोड़ता है वैसे यह प्राणी सदा भिन्न २ रूपोंको-शरीरोंको ग्रहण करता है और छोड़ता है।

देवलोके नृलोके च तिरश्चि नरकेऽपि च ।
न सा योनिर्न तद्रूपं न तद्देशो न तत्कुलम् ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस संसारकी चार गतियोंमें फिरते हुए जीवके वह योनि, वह रूप, वह देश, वह कुल, वह सुख दुःख, वह पर्याय नहीं है, जो निरन्तर गमनागमन करनेसे प्राप्त न हुई हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूपः कृमिर्भवत्यत्र कृमिश्चामरनायकः ।
शरीरी परिवर्त्तेत कर्मणा वञ्चितो बलात् ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस संसारमें यह प्राणी कर्मोंके फलसे ठगा हुआ, राजासे मरकर लट होजाता है और लटका जीव क्रम क्रमसे इन्द्रपद पालेता है।

माता पुत्री स्वसा भार्या सैव संपद्यतेऽङ्गजा ।
पिता पुत्रः पुनः सोऽपि लभते पौत्रकं पदम् ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस संसारमें प्राणीकी माता मरकर पुत्री होजाती है, बहन मरकर स्त्री होजाती हैं, वही स्त्री मरकर अपनी ही पुत्री होजाती है। पिता मरकर पुत्र होजाता है। फिर वही मरकर पुत्र-का पुत्र होजाता है, इसप्रकार उलटपलट हुआ करती है।

श्वभ्रे शूलकुठारयन्त्रदहनक्षारक्षुरव्याहतै-
स्तिर्यक्षु श्रमदुःखपावकशिखासंभारभस्मीकृतैः ।
मानुष्येऽप्यतुलप्रयासवशगैर्देवेषु रागोद्धतैः,
संसारेऽत्र दुरन्तदुर्गतिमये वम्भ्रम्यते प्राणिभिः ॥१७॥

भावार्थ—इस दुर्निवार दुर्गतिमय संसारमें जीव निरन्तर भ्रमण करते हैं। नरकोंमें तो ये शूली, कुल्हाड़ी, घाणी, अग्नि, क्षार जल, छुरा, कटारी, आदिसे पीड़ित हुए नानाप्रकारके दुःखों-को भोगते हैं। पशुगतिमें परिश्रमादि दुःखकी अग्निकी शिखाके भारसे भस्म होकर दुःखी होता है तथा मनुष्यगतिमें अपार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दौड़ दूप करनेसे चैन नहीं पाता और देवगतिमें राग क्रियाओंसे अपनी आयु बिता देता है।

दृष्ट्वा जनं व्रजसि किं विषयाभिलाषं
स्वल्पोप्यसौ तव महज्जनयत्यनर्थम्।
स्नेहाद्यु पक्रमजुषो हि यथातुरस्य
दोषो निषिद्धचरणं न तथेतरस्य ॥ १६१ ॥

भावार्थ—हे मूढ़ ! तू लोगोंको देखकर उनकी देखा-देखी क्यों विषयभोगोंकी इच्छा करता है। यह विषय भोग थोड़ेसे भी सेवन किये जावें तो भी महान अनर्थको पैदा करते हैं। जैसे रोगी मनुष्य थोड़ा भी घी दूध आदिका सेवन करे तो भी उसको वे दोष उत्पन्न करते हैं, वैसा दोष दूसरेको नहीं उत्पन्न करते हैं। इसलिये विवेकी पुरुषोंको विषयाभिलाषा करना उचित नहीं है।

श्री अमितगति आचार्य तत्वभावनामें कहते हैं—

बाह्यं सौख्यं विषयजनितं मुञ्चते यो दुरन्तं।
स्थेयं स्वस्थं निरुपममसौ सौख्यमाप्नोति पूतम् ॥
योऽन्यैर्जन्यं श्रुतिविरतये कर्णयुग्मं पिधत्ते।
तस्यच्छन्नो भवति नियतः कर्णमध्येऽपि घोषः ॥३६॥

भावार्थ—जो कोई दुःखरूपी फलको देनेवाले इस बाहरी इंद्रिय विषयोंके सुखको छोड़ देता है वही स्थिर, पवित्र, अनुपम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मीय सुखको पाता है। जो कोई दूसरोंके शब्द कानोंमें न पड़ें इसलिये अपने दोनों कानोंको ढकता है, उसीके कानमें एक गुप्त शब्द निरन्तर होता रहता है।

व्यावृत्येन्द्रियगोचरोरुगहने लोलं चरिष्णुं चिरं ।
दुर्वारं हृदयोदरे स्थिरतरं कृत्वा मनोमर्कटम् ॥
ध्यानं ध्यायति मुक्तये भवततेर्निर्मुक्तभोगस्पृहो ।
नोपायेन विना कृता हि विधयः सिद्धिं लभंते ध्रुवम् ॥५४॥

भावार्थ—जो कोई कठिनतासे वश करने योग्य इस मन रूपी बंदरको जो इन्द्रियोंके भयानक वनमें लोभी होकर चिरकाल से चर रहा था, हृदयमें स्थिर करके बांध देते हैं और भोगोंकी वांछा छोड़कर परिश्रमके साथ ध्यान करते हैं वे ही मुक्तिको पासकते हैं। बिना उपायके निश्चयसे सिद्धि नहीं होती है।

पापानोकहसंकुले भववने दुःखादिभिर्दुर्गमे ।
यैरज्ञानवशः कषायविषयैस्त्वं पीडितोऽनेकधा ॥
रे तान् ज्ञानमुपेत्य पूतमधुनां विध्वंसयाशेषतो ।
विद्वांसो न परित्यजंति समये शत्रूनहत्वा स्फुटं ॥६५॥

भावार्थ—इस संसार वनमें, जो पाप रूपी वृक्षोंसे पूर्ण है व दुःखोंसे अति भयानक है, जिन कषायोंसे और इंद्रियोंके भोगोंसे तू अपने अज्ञानसे वार वार दुःखित किया गया है, उनको अब तू पवित्र ज्ञानको प्राप्त करके जड़मूलसे बिलकुल नाश कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डाल । विद्वान् लोग समय पाकर शत्रुओंको विना मारे नहीं छोडते हैं ।

भीतं मुंचति नांतको गतघृणो भैषीर्वृथा मा ततः,
सौख्यं जातु न लभ्यतेऽभिलषितं त्वं माभिलाषीरिदं ।
प्रत्यागच्छति शोचितं न विगतं शोकं वृथा मा कृथाः,
प्रेक्षापूर्वविधायिनो विदधते कृत्यं निरर्थं कथम् ॥७३॥

भावार्थ—मरण जब आता है तब उससे भय करने पर भी वह छोड़ता नहीं । इसलिये तू उससे घृणा छोड़ दे और भय मत कर । जब तू इच्छित विषय भोगोंको कदापि पा नहीं सक्ता तो तू उनकी बांछा मत कर । जिसका मरण हो गया वह शोक करने पर जब लौटके आता नहीं तब तू वृथा शोक मत कर; विचारपूर्वक काम करनेवाले किसी भी कामको वृथा नहीं करते हैं ।

यो निःश्रेयसशर्मदानकुशलं संत्यज्य रत्नत्रयम्,
भीमं दुर्गमवेदनोदयकरं भोगं मिथः सेवते ।
मन्ये प्राणविपर्ययादिजनकं हालाहलं वल्भते,
सद्यो जन्मजरांतकक्षयकरं पीयूषमत्यस्य सः ॥१०१॥

भावार्थ—जो कोई मूढ मोक्षके सुखको देनेवाले रत्नत्रय धर्मको छोड़कर भयानक व तीव्र दुःखके फलको पैदा करनेवाले भोगोंको बारबार सेवन करता है, मैं ऐसा मानता हूं कि वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्म जरा मरणके नाशक अमृतको शीघ्र फेंककर प्राणोंको हरने-वाले हलाहल विषको पीता है।

चक्री चक्रमपाकरोति तपसे यत्तन्न चित्रं सताम्,
सूरीणां यदनश्वरीमनुपमां दत्ते तपःसंपदम्।
तच्चित्रं परमं यदत्र विषयं गृह्णाति हित्वा तपो।
दत्तेऽसौ यदनेकदुःखमवरे भीमे भवाम्भोनिधौ ॥ ६७॥

भावार्थ—यदि चक्रवर्ती तपके लिये चक्रको त्याग देता है तो इससे सज्जनोंको कोई आश्चर्य नहीं भासता है। यदि तपस्वियोंको यह तप अनुपम अविनाशी संपदाको देता है इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं। बड़ा भारी आश्चर्य तो यह है कि जो तपको छोड़कर विषयभोगोंको ग्रहण करता है वह इस महान भयानक संसार-समुद्रमें अपनेको अनेक दुखोंके मध्यमें पटक देता है।

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा,
परिणमितसमाधिः सर्वसत्वानुकम्पी।
विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं,
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥२२५॥

भावार्थ—जो साधु यम नियममें तत्पर है, जिनका अन्तरंग व बहिरंग शांत है, परसे ममता रहित हैं, समाधिभावको प्राप्त हुए हैं, सब जीवोंमें जो दयालु हैं, शास्त्रोक्त अल्प मर्यादित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहारके जो करनेवाले हैं, निद्राको जिन्होंने जीता है, आत्मा स्वभावका सार जिन्होंने निश्चय कर लिया है वे ही ध्यानके बलसे सर्व दुःखोंके जालको जला देते हैं।

समधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः
स्वहितनिहितचित्ता शांतसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्पाः सर्वसंकल्पमुक्ताः
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः॥ २२६॥

भावार्थ–जिन्होंने सर्व शास्त्रोंका रहस्य जाना है, जो सर्व पापोंसे दूर है, जिन्होंने आत्म कल्याणमें अपना मन लगाया है, व जिन्होंने सर्व इन्द्रियोंके विषयोंको शमन कर दिया है, जिनकी वाणी स्वपर कल्याणकारिणी है, जो सर्व संकल्पसे रहित हैं, ऐसे विरक्त साधु सिद्ध सुखके पात्र क्यों न होंगे अवश्य होंगे।

——×——

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय अध्याय

सांसारिक भ्रमणका कारण

लेश्या

अनन्त शक्तियोंका स्वामी यह जीव संसारमें दीन हीन निर्बल लाचार हुआ जगह जगह ठोकरें खाता हुआ क्यों भ्रमण करता है ? इस प्रश्नका संक्षेपमें एक यही उत्तर है कि अपने ही विकृत परिणाम इस जीवको इसके लिये समस्त दुख सामग्री जुटाते हैं। यदि इसके परिणामोंमें से विकार निकल जावे तो फिर संसारमें कोई भी शक्ति इसे अपने अधीन करके दुखी नहीं कर सकती।

इन विकृत परिणामोंको जैन सिद्धान्तमें 'लेश्या' कहा है अब यहां पर उन लेश्याओंका कुछ विवेचन करते हैं—

कर्मस्कन्धैरात्मानं लिम्पतीति लेश्या।

कषायानुरंजितैव योगप्रवृत्तिर्लेश्येति ॥

भाग० पृ० ३८६

अर्थात्—कर्मस्कन्धोंसे जो आत्माको लीपते हैं उन्हें लेश्या कहते हैं। कषायों से अनुरंजित योगोंकी प्रवृत्तिको भी लेश्या कहते हैं।

षड्विधः कषायोदयः। तद्यथा तीव्रतमः, तीव्रतरः, तीव्रः, मन्दः, मन्दतरः, मन्दतमः। एतेभ्यः षड्भ्यः कषायोदयेभ्यः षड् लेश्या भवन्ति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, तथा मन्द मन्दतर, मन्दतम भेद से कषाय ६ प्रकारके हैं। इन्हीं कषायोंके भेद से लेश्यायें भी ६ प्रकारकी हैं। यथा।

(१) कृष्ण, नील, कापोत, पीत, तेज, पद्म, शुक्ल। ये भाव और द्रव्य भेद से दो प्रकारकी होती हैं। यहां भाव लेश्याओं का ही कथन किया जायेगा। इनमें सबसे निकृष्ट कृष्ण लेश्या है।

पंचास्तिकायकी टीका करते हुए स्व० ब्र० शीतल प्रसाद जी ने लेश्याओंका संक्षेपमें अच्छा विवेचन किया है उसको उपयोगी समझकर यहां पर उद्धृत करते हैं—

लेश्या गतिनामा नामकर्म व आयुकर्मके बंधनेका बीज है। इसलिये लेश्याका नाश करना योग्य है। जिसका उपाय यह है कि जब यह भावना की जाती है कि मैं क्रोध मान, माया, लोभ रूप चारों कषायोंके उदयसे भिन्न हूँ, तथा अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख तथा अनंत वीर्य इन चार अनंतचतुष्टयसे भिन्न नहीं हूँ ऐसा मैं परमात्मस्वभावधारी हूं, तब कषायोंके उदयका नाश होता है, इस भावनाके लिये ही शुभ या अशुभ मन वचन कायसे व्यापारका त्याग किया जाता है। इसी ही क्रमसे तीनों योगोंका अभाव होजाता है तब कषायोंके उदयसे रंगी हुई योगोंकी प्रवृत्तिरूप लेश्याका भी विनाश होजाता है। लेश्या के अभावसे गतिनामकर्म तथा आयुकर्मका भी अभाव होजाता है तब अक्षय अनंत सुखादि गुणोंसे पूर्ण मोक्षका लाभ होता है।

अभिप्राय यह है कि जीव लेश्याके अनुसार आयुकर्म तथा गतिनाम कर्म बाँधता है और लेश्याके अनुसार एक आयु व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गतिको छोड़ कर दूसरी आयु व गतिमें प्राप्त होजाता है। मरणके अन्तमें जो लेश्या हो उसी लेश्याका सम्बन्ध दूसरी गतिमें अपर्याप्त अवस्था तक अवश्य चला जाता है। लेश्या आत्माकी योगशक्तिके परिणमनको कहते हैं जो परिणमन मन वचन कायकी क्रियाके आलम्बनसे कषायोंके उदयके रंगसे रंगा हुआ हो—वास्तवमें लेश्या योग प्रवृत्ति और कषायका उदय इन दोनोंकी मिली हुई अवस्थाका नाम है। यद्यपि कषाय रहितके योग प्रवृत्ति कषायानुरंजित नहीं होती है तथापि योग-प्रवृत्ति रहनेसे शुक्ललेश्या सयोगकेवली तक बताई है—अयोगकेवलीके न योग-प्रवृत्ति है, न कषायोंका उदय है इसलिये वहां लेश्या का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। छः लेश्याओंमें कृष्ण, नील, कापोत अशुभ हैं जब कि पीत, पद्म, शुक्ल शुभ हैं। नारकी जीव और चार इंद्रिय तक सब जीव तीन अशुभ लेश्यावाले ही हैं। पंचेन्द्रिय असैनीके कृष्णसे पीततक चार लेश्याएं होती हैं, शेष पंचेन्द्रिय सैनी मनुष्य तथा तिर्यंचोंके छहों लेश्याएं होती हैं। देवोंके पर्याप्त अवस्थामें पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या ही है। अपर्याप्त अवस्थामें भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषीके कृष्ण, नील व कापोत तीन अशुभ लेश्याएं होती हैं। लेश्याओंका स्वरूप नीचेप्रकारसे श्री गोम्मटसारमें है—

कृष्णलेश्यावालेका स्वरूप ऐसा कहा है—

मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विणाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य॥ ५१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—जो स्वच्छंद हो, क्रियामें मन्द हो; बुद्धि रहित हो, वर्तमान कार्यको न जानता हो, विज्ञान व चातुरीसे रहित हो इंद्रियोंके विषयोंका अति लम्पटी हो, अभिमानी हो, मायाचारी हो, आलसी हो तथा जिसके मनके अभिप्रायको दूसरा न जान सके ये चिन्ह कृष्णलेश्यावाले जीवके हैं।

णिद्दावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेस्सस्स।५११॥

भावार्थ—जिसके निद्रा बहुत हो, जो दूसरोंको बहुत ठगता हो, धन धान्य आदिमें तीव्र लालसावान हो, यह संक्षेप से नीललेश्यावाले जीवका चिन्ह कहा गया है—

रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो।
असुयइ परिभवइ परंपसंसये अप्पयं बहुसो ॥५१२॥
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं इव परंपि मण्णंतो।
थूसइ अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणिवड्ढि वा ॥५१३॥
मरणं पत्थेइ रणे देइ सुबहुगंपि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥५१४॥

भावार्थ—जो दूसरोंपर बहुत क्रोध करे, बहुत प्रकार और की निन्दा करे, बहुत प्रकार दूसरोंको दुःखी करे, जिसके शोक व भय बहुत हो, दूसरोंके साथ ईर्षा रक्खे, दूसरोंका अपमान करे, अपनी बहुत बड़ाई करे, जो अपने समान दूसरेको पापी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

य कपटी मानता हुआ उसका विश्वास न करे, जो अपनी स्तुति करे उसपर बहुत प्रसन्न हो, दूसरेकी हानि व लाभपर ध्यान न दे, जो युद्धमें अपना मरण चाहे, जो अपनी बड़ाई करे उसको धन दे, तथा जो कर्तव्य अकर्तव्यको न गिने ऐसे चिन्ह कापोत लेश्यावालेके होते हैं।

जाणइ कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥५१५॥

भावार्थ—जो कर्तव्य अकर्तव्य, सेवनेयोग्य नसेवने योग्यको जाने, सर्वको अपने समान देखनेवाला हो, दया व दान में प्रीति रखता हो तथा मन, वचन, कायमें कोमल हो ऐसे चिन्ह पीत लेश्यावाले जीवके होते हैं।

चागी भद्दी चोक्खो उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥ ५१६ ॥

भावार्थ—जो त्यागी हो, भद्र हो—सुकार्य करनेका स्वभाव रखता हो, शुभ कार्यमें उद्यमी हो, कष्ट व उपद्रवको बहुत सहन करनेवाला हो, साधुओंकी और बड़ोंकी भक्तिमें प्रीतिमान हो ऐसे चिन्ह पद्मलेश्यावाले जीवके हैं

ण कुणइ पक्खवायं णवि य णिदाणं समो य सिव्वेस।
णत्थिय रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेस्सस्स ॥ ५१७ ॥

भावार्थ—जो पक्षपात न करे, जो निदान न करे अर्थात् भोगाकांक्षासे धर्म न सेवै, जो सर्व जीवोंमें समताभाव रखता हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इष्ट व अनिष्टमें राग द्वेष न करता हो पुत्र स्त्री आदिमें स्नेह रहित हो ऐसे चिन्ह शुक्ललेश्यावाले जीवके हैं।

इन छह लेश्याओंके लिए एक दृष्टांत दिया है सो यह है—

पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्ठारएणमज्झदेसम्मि।
फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति ॥ ५०७ ॥
णिम्मूलखंधसाहुबसाहं छित्तु चिणित्तु पडिदाइं।
खाउं फलाइं इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं ॥ ५०८॥

भावार्थ—कृष्णादिक छहों लेश्यावाले छहपथिक मार्ग भूलकर एक वनमें पहुंच गए। वहां फलके भारसे भरे हुए एक वृक्षको देखकर वे ऐसा विचार करने लगे—कृष्णलेश्याके भावको रखनेवाला विचारता है कि मैं इस वृक्षको जड़से उखाड़ डालूंगा और फल खाऊंगा। नोल लेश्यावाला विचारता है कि मैं इसवृक्ष की बड़ी २ शाखाओंको काटकर फल खाऊं। पीत लेश्यावाला विचारता है कि मैं इसवृक्षकी छोटीछोटी टहनियोंको काटकर फल खाऊंगा। पद्मलेश्यावाला विचारता है कि मैं वृक्षके फलोंको ही तोड़कर खाऊगा शुक्ललेश्यावाला विचारता हैं कि मैं उनफलोंको ही खाऊंगा जो अपनेआप टूटकर गिरे हों। इस प्रकार मनसे विचारे व कहे सो छह लेश्याओंके कर्म हैं।

इस दृष्टांतसे छह प्रकारकी लेश्यावाले जीवोंके भावोंका पता चलता है।

इन लेश्याके अंशोंसे ही परभवके लिये आयु बंध होती हैं व इन ही लेश्याओंको लिये हुए ही मरकर जहां उस लेश्याका होना संभव है वहीं यह जीव जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छह लेश्याओंके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट ऐसे अठारह भेद हैं इनमें जीव मरकर दूसरी गतिको जाते हैं। इनहीके मध्यमें आठ अंश ऐसे हैं जिनमें आयु कर्मका बंध होता है। गोम्मटसार कर्मकांडके स्थानसमुत्कीर्तन अधिकारमें कहा है कि तेजोलेश्याके जघन्य स्थानके पीछे अपना अनंत गुण वृद्धिरूप मध्यम स्थानसे लगाय कापोतलेश्याका जघन्य स्थानके पीछे अनंतगुण वृद्धिको लिये हुए उसहीके मध्यम स्थान पर्यंत अथवा कापोतलेश्याके जघन्य स्थानके पीछे अनंतगुण वृद्धिरूप जो तेजोलेश्याका मध्यम स्थान तहां पर्यंत पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नीलके जघन्य अंश ऐसे चार अंश तो ये तथा चार अंश नीचे प्रमाण हैं—

(१) चारों ही आयुबंधके कारण पृथ्वी भेद समान कषायमें कृष्णादि छहोंके मध्यम अंश।

(२) नरक विना तीन आयु बंधके कारण धूलि रेखा समान कषायमें कृष्णादि छहों लेश्याके मध्यम अंश।

(३) नरक तिर्यंच विना दो आयु बंधके कारण धूलिरेखा समान कषायमें कृष्णादि छहों लेश्याके मध्यम अंश।

(४) केवल देव आयु बंधके कारण धूलि रेखा समान कषाय में कृष्ण विना ५के या कृष्ण नील विना ४ के या पीतादि तीन लेश्याके मध्यम अंश इस तरह आठ अंश आयु बंधके कारण हैं।

आयु कर्मका बंध हर समय नहीं होता। कर्मभूमिके मनुष्य या तिर्यंचके लिये यह नियम है कि जितनी आयुकी स्थिति हो उसके दो तिहाई बीतनेपर एक अन्तमुहूर्तके लिये पहला अवसर आता है। इस मध्यमें यदि आयु बंधके योग्य मध्यम लेश्याके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंश होते हैं तो आयु बंधती है यदि नहीं होते हैं तो नहीं बंधती है फिर शेष आयुमेंसे दो तिहाई भाग जानेपर दूसरी दफे एक अंतर्मुहूर्तके लिये अवसर आता है, यदि यहां भी नहीं बंधी तो फिर दो तिहाई बीतनेपर तीसरी दफे अंतर्मुहूर्तके लिये अवसर आएगा। इस तरह दो तिहाई स्थितिके बीतते हुए आठ दफे अवसर आयगा। इसको अपकर्ष कहते हैं। जो आठ दफेमें आयु न बंधी तो मरणके अंतर्मुहूर्त पहले अर्थात् मरणके कालके अंतर्मुहूर्तके मध्यमें ही आयु अवश्य बंध जायगी। जैसे किसीकी आयुकी स्थिति ६५६१ वर्ष है तो उसके आठ अपकर्ष नीचे प्रमाण वर्ष शेष रहनेपर आयंगे—

(१) प्रथम अपकर्ष जब २१८७ वर्ष शेष रहें।
(२) दूसरा „ ७२९ „ „
(३) तीसरा „ २४३ „ „
(४) चौथा „ ८१ „ „
(५) पांचवा „ २७ „ „
(६) छठा „ ९ „ „
(७) सातवां „ ३ „ „
(८) आठवां „ १ „ „

जब किसी अपकर्षमें परभवके लिये आयु बांध ली हो तब उसके आगे आनेवाले अपकर्षोंमें उस समयकी लेश्याके अनुसार आयुकी स्थिति कम व अधिक हो सकती है, दूसरी आयु नहीं बंधती है। चार आयुमेंसे एक ही आयुका बंध होता है।

भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच अपनी आयुकी स्थितिमें से नौ मास शेष रहनेपर, देव नारकी अपनी स्थितिके छः मास शेष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहनेपर इसी स्थितिको आठ त्रिभागोंके कालमें ही आयु बांधते हैं

मरण समय कौनसी लेश्यावाला कौनसी गतिको जाता है इसका कथन श्रीगोम्मटसारजीके अनुसार इसलिए दिया जाता है कि जो अपना हित करना चाहें वे शुभगति संबन्धी भावोंके होनेको निमित्त मरण समय मिलनेका उद्यम रक्खें।

सेसट्ठारसअंसा चउगइगमणस्स कारणा होंति ।
सुक्कुक्कस्संसमुदा सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ॥५१९॥

भावार्थ—लेश्याके छब्बीस अंशोंमेंसे मध्यके आठ अंशोंको छोड़कर जिनमें आयुकर्म बंधनेकी योग्यता है शेष अठारह अंशोंमें अर्थात् छहों लेश्याओंके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदोंमें चारों गतियोंमें जानेके कारण भाव होते हैं

शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे हुवे जीव सर्वार्थसिद्धिको ही जाते हैं। यहां उत्कृष्ट देव आयुकी स्थिति तेतीस सागर होती है। श्री गोम्मटसारकी गाथा ५२० से ५२६ तक जो लेश्याओंके द्वारा जन्मोंका कथन है उसका भाव नीचे प्रमाण जानना—

शुक्ल लेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव आनत नाम तेरहवें स्वर्गसे लेकर विजयादि चार अनुत्तर विमानोंमें पैदा होते हैं तथा शुक्ल लेश्याके जघन्य अंशसे मरकर शतार सहस्रार नाम ११ वें व १२ वें स्वर्गमें जन्मते हैं। पद्म लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरकर सहस्रार नाम बारहवें स्वर्गमें तथा उसके जघन्य अंशसे रकर सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें पैदा होते हैं तथा पद्म-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्याके मध्यम अंशसे मरकर सहस्रारसे नीचे सनत्कुमार, माहेन्द्रके ऊपर यथायोग्य जन्मते हैं। तेज या पीत लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरकर सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके अंतके पटलमें चक्रनामा इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंमें उपजते हैं। तेज लेश्याके जघन्य अंशसे मरकर उसके सौधर्म ईशान स्वर्गका पहिला ऋतु नामा इन्द्रक या इसके श्रेणीबद्ध विमानोंमें तथा उसके मध्यम अंशसे मरकर सौधर्म ईशानके दूसरे पटलके विमल नाम इंद्रकसे लगाकर सनत्कुमार माहेन्द्रके अंतिम पटलके नीचे पटलके बलभद्र नाम इंद्रक तक विमानोंमें पैदा होते हैं।

कृष्ण लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरकर जीव सातवें नरकके अवधिनाम इंद्रकविलमें पैदा होते हैं। इसीके जघन्य अंशसे मरकर जीव पांचवे नरकके अंत पटलके तिमिस्र नाम इंद्रकमें तथा मध्यम अंशसे मरकर सातवें नरकके शेष चार विलोंमें व छठे नरकके तीनों पटलोंमें व पांचवीं पृथ्वीके अंतिम पटलमें यथायोग्य उपजते हैं।

नीललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरकर जीव पांचमी नरकके अंतिम पटलसे पहले पटलके अंध्र नाम इंद्रकमें, व जघन्य अंशसे मरकर तीसरी वालुका पृथ्वीके अंत पटलमें संप्रज्वलित नाम इंद्रकमें, मध्यम अंशसे मरकर बालुका पृथ्वीके संप्रज्वलित इंद्रकसे नीचे, चौथी पृथ्वीके सात पटलोंमें व पांचमी नरकके अंध्र इंद्रकसे ऊपर पैदा होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कापोत लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरकर तीसरी नरकके आठवें पटलके संज्वलित नाम इंद्रकमें, जघन्य अंशसे मरकर पहली पृथ्वीके पहला सीमन्तक नामा इन्द्रकमें, मध्यम अंशसे मरकर इन दोनोंके मध्यमें पैदा होते हैं।

तथा कृष्ण, नील, कापोत इन तीन लेश्याओंके मध्यम अंशसे मरे ऐसे कर्मभूमिया मिथ्यादृष्टी तिर्यंच या मनुष्य और तेजोलेश्याके मध्यम अंशसे मरे ऐसे भोगभूमियां मिथ्यादृष्टी तिर्यंच या मनुष्य तीन प्रकारके भवनवासी, व्यन्तर व ज्योतिष देवोंमें उपजते हैं।

कृष्ण, नील, कापोत, पीत इन चार लेश्याओंके मध्यम अंश से मरे तिर्यंच या मनुष्य या भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी या सौधर्म ईशान स्वर्गके वासी देव मिथ्यादृष्टी सो बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक, जलकायिक व वनस्पतिकायिकमें पैदा होते हैं। यहां भवनत्रयादि देवोंके मात्र पीतलेश्यासे व तिर्यंच या मनुष्योंके कृष्णादि तीन लेश्यासे मरण होता है।

कृष्ण, नील, कापोतके मध्यम अंशसे मरे ऐसे तिर्यंच या मनुष्य अग्निकायिक, वातकायिक विकलत्रय असैनी पंचेन्द्री, व साधारण वनस्पतिमें उपजते हैं।

तथा सामान्य नियम यह है कि भवनत्रिकको आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि तक देव व घम्मा आदि सात पृथ्वी सम्बंधी नारकी अपनी अपनी लेश्याके अनुसार यथायोग्य मनुष्य गति या तिर्यंच गतिको जाते हैं। यह भी बात जान लेनी चाहिये कि जिस गति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्धी पहले आयु बांधी हो उस ही गतिमें मरणके समय होनेवाली लेश्याके अनुसार यह जीव पैदा होता है। जैसे मनुष्यके पहले देव आयुका बंध भया होय फिर मरण होते हुए कृष्ण आदि अशुभ लेश्या हो तो भवनत्रिकमें ही पैदा होता है ऐसा ही नियम और स्थानमें भी जानना। पंडित टोडरमलजीके इस कथनसे यह बात सिद्ध होती है कि मरणके समय जैसा लेश्या सम्बन्धी भाव होगा उसीके अनुसार जहां वह लेश्या अपर्याप्त अवस्थामें संभव होगी वहीं वह जीव जायगा। ऐसा जानकर मुमुक्षु जीवको उचित है कि अशुभ लेश्या सम्बन्धी भावोंको त्यागकर शुभलेश्या सम्बंधी भावोंको करे। सबसे उचित भाव शुक्ललेश्याके हैं। इस भावकी प्राप्तिके लिये हमें अपने ही आत्माके शुद्ध स्वरूपका विचार करना चाहिये। शुद्ध वीतराग भावकी भावना ही भावोंको उत्तम बनानेवाली है।

पंच परिवर्तन

इन लेश्याओंके आधीन होकर यह जीव अनादिकालसे इस संसारमें भ्रमण कर रहा है। जिसका क्रम निम्न प्रकार है।

(स्व० पं० दयावसिंहजी सोधियाके श्रावकधर्मसंग्रहसे संकलित)

जन्म मरण प्रारंभ करके वार वार पूर्ण करनेको परिभ्रमण परिवर्तन या संसार कहते हैं, सो पांच भेद रूप है। यथा:— द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। यहां प्रसंगानुसार इनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्षिप्त एवं स्थूल स्वरूप कहा जाता है, विशेष स्वरूप श्री गोमट्ट-सारसे जानना।

(१) द्रव्यपरिवर्तन—इसका दूसरा नाम पुद्गलपरिवर्तन भी है। इसके दो भेद हैं। नोकर्म-परिवर्तन और कर्म परिवर्तन।

नोकर्मपरिवर्तन—औदारिक, वैक्रियक, आहारक तीन शरीर संबन्धी छह पर्याप्ति होनेके योग्य पुद्गल—वर्गणाओंको नोकर्म-वर्गणा कहते हैं। किसी जीवने किसी समय जिन नोकर्मवर्ग-णाओंको स्पर्श, रस गन्ध वर्णादि करि तीव्र, मध्यम, मंद भाव लिए हुए यथासंभव ग्रहण किये। पश्चात् समयोंमें उन वर्गणा-ओंकी निर्जरा होती रहती है। इस प्रकार अनंतवार अगृहीत[1]के समय-प्रवद्धोंको ग्रहण कर कर छोड़े, अनंतवार मिश्रको ग्रहण कर कर छोड़े तथा अनंतवार गृहीत वर्गणाओंके समय-प्रवद्धको ग्रहण कर कर छोड़े। ऐसा करते हुए जिस समय उन्हीं,

---

१ जो परमाणु पहले कभी ग्रहण न किये हों, प्रथम ही नये ग्रहण किये जायें सो 'अगृहीत' जो पहले ग्रहण किये जाकर फिर ग्रहण किये जायें सो '(गृहीत)' तथा कुछ नये, कुछ पूर्वमें ग्रहण किये हुए मिलकर ग्रहण किये जायें सो मिश्र कहाते हैं। प्रगट रहे कि अना-दिकालसे एक एक जीवने अनंत अनन्त पुद्गल, समय समय ग्रहण किये, तो भी लोकमें बहुतसे अगृहीत परमाणु अब भी मौजूद हैं। अथवा जब नया परिवर्तन शुरू होता है तब पूर्व-परिवर्तनमें ग्रहण किये हुए परमाणु भी अगृहीत कहलाने लगते हैं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम समयमें ग्रहणकी हुई नोकर्म वर्गणाओंको गणनामें उतनी ही तथा वैसे ही स्पर्श, रस, गंध, वर्णादिको लिए हुए ग्रहण करे। ऐसी क्रिया होनेके समुदायरूप सम्पूर्ण कालको एक नोकर्म-परिवर्तन काल कहते हैं।

कर्म परिवर्तन—ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप होने योग्य पुद्गल वर्गणाओंको कर्मवर्गणा कहते हैं। किसी जीवने किसी समय आठ प्रकार कर्मरूप होने योग्य कार्माण-वर्गणा ग्रहण की, समय अधिक आवलीमात्र आवाधा–काल व्यतीत होनेपर उनकी निर्जरा होने लगती है। इसके अनंतर जैसा अनुक्रम नोकर्मपरिवर्तनमें कहा है, वैसे ही अगृहीत, मिश्र तथा गृहीतके समय-प्रबद्धको अनंत अनंत वार ग्रहण करि करि छोड़े, इस प्रकार करते हुए वह जीव जिस समय प्रथमवार ग्रहण की हुई कर्म-वर्गणाओंको उतने ही प्रमाण ग्रहण करि कर्मत्त्वभावको प्राप्त करे, उस बीचके सम्पूर्ण कालको एक कर्मपरिवर्तन काल जानो।

(२) क्षेत्रपरिवर्तन – कोई जीव किसीसमय जघन्य अवगाहनायुक्त सूक्ष्म-लब्धि-अपर्याप्तक निगोदियाका शरीर धारण करे, पश्चात् उससे एक प्रदेश बढ़ती अवगाहनाको धरे। इस प्रकार क्रमसे एक एक प्रदेश बढ़ता हुआ महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहनापर्यंत शरीर धारण करे, बीचमें जो क्रमरहित अवगाहना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्त शरीर धारण करे, सो गिनतीमें नहीं। ऐसा करते हुए जितना समय लगे सो सब एक स्वक्षेत्रपरिवर्तन काल जानो।

पर क्षेत्रपरिवर्तन—कोई सूक्ष्म लब्धि- अपर्याप्तक निगोदिया जीव जघन्य अवगाहनाके शरीरको धारण कर मेरुके नीचे, लोकके मध्य भागमें इस प्रकार जन्म ले, कि उस जीवके मध्यके ८ प्रदेश, लोकके आठ प्रदेशों[१] पर आ जावें। पश्चात् आयु पूर्ण होनेपर संसार भ्रमण करता हुआ फिर किसी कालमें उतने ही प्रदेश प्रमाण अवगाहनाका शरीर धारण करे उसी उसी क्षेत्रमें जन्म ले, इसी भांति शरीरकी अवगाहनाके वराबर असंख्यात प्रदेश—प्रमाण वार उसी क्षेत्रमें उसी प्रकार जन्म ले, पश्चात् एक प्रदेश प्रमाण अधिक क्षेत्रको बढ़ाकर[२] जन्म ले, ऐसे क्रमसे श्रेणीवद्ध एक एक प्रदेश बढ़ाता हुआ लोकाकाशके सम्पूर्ण प्रदेशों में जन्म ले। क्रम-रहित प्रदेशोंमें जन्म लेना गिनतीमें नहीं, इस प्रकार लोकाकाशके सम्पूर्ण प्रदेशोंमें जन्म तथा मरण करनेमें जितना काल लगे वह सब एक परक्षेत्रपरिवर्तन काल जानो।

---

१ सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्त निगोदियाके शरीरकी अवगाहना असंख्यात प्रदेश प्रमाण होती है इसलिए लोकके मध्यके ८ प्रदेशोंको अपने आठ रुचिक (मध्यके) प्रदेशोंसे दावता तथा और भी आस-पासके क्षेत्रको रोकता है।

१ प्रदेश आगे बढ़ानेका मतलब ऐसा नहीं है कि पहले प्रदेशोंको भी शामिल करके उतना बड़ा शरीर करे। किंतु आगे एक एक प्रदेश क्रमसे बढ़ाता जाये, पीछेके प्रदेश चाहे छूटते जायें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) कालपरिवर्तन—कोई जीव उत्सर्पिणीकालके प्रथम समयमें उत्पन्न हुआ, मरकर संसारमें भ्रमण करता करता फिर किसी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें उत्पन्न हो, इसी प्रकार तृतीयादि समयोंमें क्रमसे जन्म ले लेकर उत्सर्पिणीके दस कोड़ा कोड़ी सागर व अवसर्पिणीके दस कोड़ा कोड़ी सागर इस प्रकार २० कोड़ा कोड़ी सागर (कल्प काल) के समयोंको क्रमपूर्वक जन्म ले ले कर पूर्ण करे, क्रम-रहित गिनतीमें नहीं ऐसा करनेमें जितना काल व्यतीत हो, वह सब एक काल परिवर्तन जानो।

(४) भवपरिवर्तन—कोई जीव प्रथम नरकमें दस हजार वर्ष की जघन्य आयु पाकर जन्मा, आयु पूर्ण होने पर मरा, पीछे संसार भ्रमण करते करते फिर किसी कालमें उतनी ही आयुका धारक हुआ, इस प्रकार दस हजार वर्षके जितने समय होते हैं, उतने बार दस दस हजार वर्षकी आयुका ही धारक होकर, पीछे क्रमसे एक एक समय अधिक, आयु धारण कर नरकायुका उत्कृष्ट ३३ सागर प्रमाण काल पूर्ण करे। इसी प्रकार देवायुको जघन्य-स्थिति दस हजार वर्षसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति ३१ (इकतीस) सागर[1] तक तथा मनुष्यायु—तिर्यंचायुकी जघन्य स्थिति अंतर मुहूर्तसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य पर्यंत क्रमपर्वक एक एक

---

१ देवायुमें ३१ (इकतीस) सागरसे अधिक आयुका धारक नियमसे सम्यक्त्वी मोक्षमार्गी ही होता है अतएव उसे परिवर्तन नहीं करना पड़ता, इसीलिये यहां ३१ (इकतीस) सागर कहा है '

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय बढ़ाता हुआ पूर्ण करे। क्रम रहित गिनतीमें नहीं। ऐसा करते हुए चारों आयुके पूर्ण करनेमें जितना काल लगे, वह सब भव-परिवर्तन जानो।

भावपरिवर्तन—योगस्थान, अनुभाग-अध्यवसाय स्थान, कषाय-अध्यवसाय-स्थान, स्थिति-स्थान इन चारोंका परिवर्तन क्रमपूर्वक पूर्ण होना, सो एक भाव परिवर्तन काल है अर्थात् किसी जीवके जिस समय जघन्य स्थिति-स्थान, जघन्य कषाय अध्यवसाय-स्थान, जघन्य अनुभाग अध्यवसाय-स्थान और जघन्य ही योग स्थान हो, तब भाव परिवर्तनका आरंभ जानो। वहां योगस्थानके तो एक एक स्थान क्रमसे पलटकर उत्कृष्ट पयत असंख्यात स्थान पूर्ण हों और शेष तीनों ज्योंके त्यों जघन्य रूप ही रहें। इस प्रकार जब योग स्थान पूर्ण हो चुके, तब अनुभाग अध्यवसाय स्थान पलटकर दूसरा हो शेष दो का जघन्य स्थान ही रहे।

इस प्रकार योगस्थानोंकी पलटन-पूर्वक असंख्यात-लोक-प्रमाण अनुभाग-अध्यवसाय-स्थान क्रमसे पलट पलटकर पूर्ण हो चुकें, तब कषाय अध्यवसायका दूसरा स्थान हो। इस प्रकार योगस्थान, अनुभाग-अध्यवसाय-स्थान पूर्वक, कषायाध्यवसाय स्थान क्रमसे पलटते हुए असंख्यात लोकप्रमाण पूर्ण हों तब स्थिति स्थान जघन्यसे पलटकर दूसरा अर्थात् एक समय अधिक हों, इस प्रकार सब कर्मोंकी मूल उत्तर प्रकृतियोंके स्थिति स्थानोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी क्रम-पूर्वक पलटनेमें जितना समय लगे, वह सब भाव-परिवर्तन काल जानो।

भावार्थ—द्रव्य परिवर्तन काल अनंत है, उससे अनंतगुणा क्षेत्र-परिवर्तनका, उससे अनंतगुणा काल-परिवर्तनका, उससे अनंतगुणा भव-परिवर्तनका और उससे अनन्तगुणा भाव-परिवर्तनका काल है। इन पांचों परिवर्तनोंके कालका समूह एक परिवर्तन कहाता है।

संसार कारागार है

यह सम्पूर्ण संसार एक विशाल व सुदृढ कारागार हैं। प्राणीमात्र इसके बन्दी हैं, आयुकर्म व नाम कर्म आदि इसकी बेडियां हैं तथा अन्य कर्म इसकी कडियां हैं। यह जीव अनादि कालसे इसमें कैद है। कभी यह किसी बैरग में चला जाता है तो कभी किसीमें, परन्तु रहता इसी जेलखानेमें है। अपनी मूर्खतावश अपने पिता, माता, भाई- बन्धु स्त्रीपुत्रादि कल्पित करलिए हैं। इन्हींके मोहमें, फसकर अनेक प्रकारके पाप करता है और उन पापोंमें ही आनन्द मनाता है। अनादि कालसे इसने कभी भी इस कारागार से बाहर की शुद्ध वायुका आनन्द प्राप्त नहीं किया है, तथा उसका नाम तक भी इसने नहीं सुना है, अतः यह इसी कारागारमें मस्त है। यही इसका सवस्व है, और इसीकी बातें इसको प्यारी लगती हैं, इसीका राग इसको सुहाता है। यद्यपि यहां यह रोग शोक, भय मृत्यु जन्म, जरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि अथवा इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग आदि अनेक प्रकार नारकीय कष्टोंको भोगता है।

फिरभी यह इस कारागारसे निकलना नहीं चाहता। यदि कोई कभी महापुरुष इसको कुछ उपदेश भी देता है, तो इसको बहुत बुरा प्रतीत होता है। जिस प्रकार विषम ज्वरसे ग्रसित व्यक्ति को अमृतसा मधुररस भी महाकटु प्रतीत होता है, तथा जिस प्रकार उसको हितोपदेश नहीं सुहाता। वह दारु, दार, दामका दास होकर दयनीयदशामें मस्त है। चोरी, जारी, झूठ व क्रोधमान, माया, लोभ जो इसके भयानक शत्रु हैं उन्हीं को यह अपना परम हितू समझता हैं। उन्हींके फन्दे फंसा हुआ यह अपनेको कृतकृत्त समझता है। उन्हींके संकेतपर यह नाचता रहता है। जिस प्रकार एक गन्दी नालोका कीड़ा उसी नालीमें प्रसन्न है इसीप्रकार यह मिथ्यात्वीभी संसाररूपी नरकमें आनन्द समझना है। भावी सुखोंकी दुराशासे यह महान् कष्टोंको भी सुख समझता है। इसी विपरीत समझका नाम मिथ्यात्व है यह मोहनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न होता है। शास्त्र कहते हैं कि-

यह मिथ्यात्वी जीव शरीर-पुत्र-पौत्र आदि तथा धन्य-धान्य आदि जो कि क्षण-भंगुर है उनको नित्य मानता है। दुःखागार विषय भोगोंमें ही परम सुख समझता है। अनेक आशारूप पाशसे बन्धा हुआ रातदिन इतस्ततः भ्रमता रहता है। जब वे आशायें पूरी नहीं होतीं तब यह निराश होकर रोता पीटता है। यह क्षणमें कामी क्षणमें लोभी कभी द्वेषी कभी रागी व क्षणमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोगी, क्षणमें राजा क्षणमें रंक आदि भावोंसे भावुक होकर पागलों की तरह आचरण करता है। इसकी दशा उस बंदरकी सी है जो स्वभावसे ही चंचल है, उसपर भी उसको शराब पिला दी है, संयोग वश उसके विच्छूने डस लिया है, जिस पुराने घरमें वह रहता था वहीं भूत प्रेतोंका भी डेरा था अतः उसपर एक भूत भी सवार हो गया, ऐसे बंदरकी चंचलताका कुछ अनुमान यदि किया जा सके तो इस मोह-ग्रसित ,कामसे पीड़ित, लोभाभिभूत प्राणीकी आकुलताका अनुमान हो सके।

संसार और शरीर

लेश्याओं (विकृत भावों) के कारण यह जीव संसारमें किस तरह घूमा है तथा घूम रहा है और घूमेगा एवं शरीरके कारण किस तरह पथभ्रष्ट होता है इस बातको संक्षेपसे स्व० ब्र० शीतल प्रसादजीके ग्रन्थ सहज सुखसाधनसे यहां उद्धृत करते हैं।

जैनाचार्योंने संसारका स्वरूप क्या बताया है सो पाठकोंको नीचे लिखे उनके अनुभवपूर्ण वाक्योंसे प्रगट होगा।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वादशानुप्रेक्षामें कहते हैं—

पंचविहे संसारे जाइजरामरणरोगभयपउरे।
जिणमग्गमपेच्छंतो जीवो परिभमदि चिरकालं ॥२४॥

भावार्थ—इस द्रव्यक्षेत्रादि पांच तरहके संसार भ्रमणमें जहां यह जीव जन्म, मरण, रोग, भयके महान कष्ट पाता है, श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनेन्द्रके धर्मको न जानता हुआ दीर्घकाल तक भ्रमण किया करता है।

सव्वेपि पोग्गला खलु एगे मुत्तुज्झिया हु जीवेण ।
असयं अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥२५॥

भावार्थ—प्रथम पुद्गल द्रव्य परिवर्तनमें इस एक जीवने सर्व ही पुद्गलोंको बारबार अनन्त दफे ग्रहण कर और भोग कर छोड़ा है।

सव्वम्हि लोयखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण उप्पण्णं ।
उग्गाहणेण बहुसो पांरभमिदो खेत्तसंसारे ॥२६॥

भावार्थ—दूसरे क्षेत्र परिवर्तनमें यह जीव बारबार सर्व ही लोकाकाशके प्रदेशोंमें क्रम क्रमसे जन्मा हैं। कोई स्थान ऐसा नहीं है जहां बहुवार पैदा न हुआ हो और अनेक प्रकारके छोटे व बड़े शरीर न धारे हों।

अवसप्पिणि उवसप्पिणि समयावलियासु णिरवसेसासु ।
जादो मुदो य बहुसो परिभमिमो कालसंसारे ॥२७॥

भावार्थ—तीसरे काल-परिवर्तनमें इस जीवने उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीके सर्व ही समयोंमें बहुतवार जन्म मरण किया है। कोई समय बचा नहीं जिसमें यह अनंतवार जन्मा या मरा न हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिरयाउजहएणादिसु जाव दु उवरल्लिवादुगेवेज्जा ।
मिच्छत्तसंसिदेण दु बहुसो वि भवट्ठिदीब्भमिदा ।।२८।।

भावार्थ—चौथे भव-परिवर्तनमें नरककी जघन्य आयुसे लेकर ऊर्द्ध लोककी ग्रैवेयिककी उत्कृष्ट आयु तक सर्व ही जन्मोंको इस जीवने कई बार मिथ्यादर्शनके कारण धारण करके भ्रमण किया है।

सव्वे पयडिट्ठिदिओ अणुभागप्पदेसबंधठाणाणि ।
जीवो मिच्छत्तवसा भमिदो पुण भावसंसारे ।।२९।।

भावार्थ—पांचवें भाव-परिवर्तनमें यह जीव मिथ्यादर्शनके कारण आठों कर्मोंके सर्व ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश इन चार प्रकार बन्धस्थानोंको धारता हुआ बार बार भ्रमा है।

पुत्तकलत्तणिमित्तं अत्थं अज्जयदि पावबुद्धीए ।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे ।।३०।।

भावार्थ—जो जीव पुत्र व स्त्रीके लिए पापकी बुद्धिसे धन कमाता है, दया धर्म व दान छोड़ देता है, वह जीव संसारमें भ्रमण करता है।

मम पुत्तं मम भज्जा ममधणधएणोत्ति तिव्वकंखाए ।
चइऊण धम्मबुद्धिं पच्छा परिपडदि दीहसंसारे ।।३१।।

भावार्थ—मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरा धन धान्यादि इत्यादि तीव्र तृष्णाके वश यह जीव धर्मकी बुद्धिको त्यागकर इस दीर्घ संसारमें भ्रमता रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिच्छोदयेण जीवो णिंदंतो जेणभासियं धम्मं ।
कुधम्मकुलिंगकुतित्थं मण्णंतो भमदि संसारे ॥३२॥

भावार्थ—मिथ्यादर्शनके उदयसे यह जीव श्री जिनेन्द्र कथित धर्मकी निंदा करता है और मिथ्या धर्म, मिथ्या गुरु, व मिथ्या तीर्थको पूजता है इसलिए संसारमें भ्रमता है।

हंतूण जीवरासिं महुमंसं सेविऊण सुरपाणं ।
परदव्वपरकलत्तं गहिऊण य भमदि संसारे ॥३३॥

भावार्थ—यह जीव अनेक जन्तु-समूहको मारता है, मांस मदिरा मधु खाता है, परद्रव्य व परस्त्रीको ग्रहण कर लेता है, इसलिए संसारमें भ्रमता है ।

जत्तेण कुणइ पावं विसयणिमित्तं च अहणिसं जीवो ।
मोहंधयारसहिओ तेण दु परिपडदि संसारे ॥३४॥

भावार्थ—यह जीव मोहके अंधेरेमें अंध होकर रात दिन उद्योग करके विषय भोगोंके लिए पाप किया करता है इसीलिए इस संसारमें भ्रमता है।

संजोगविप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्खं च ।
संसारे भूदाणं होदि हु माणं तहावमाणं च॥३६॥

भावार्थ-इस संसारमें जीवोंको संयोग वियोग, लाभ हानि सुख दुःख मान अपमान हुआ करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम्मणिमित्त जीवो हिंडदि संसारघोरकांतारे।
जीवस्स ण संसारो णिच्चयणयकम्मणिम्मुक्को ॥३७॥

भावार्थ–कर्मोंके वश होकर यह जीव इस भयानक संसार वनमें भ्रमता फिरता है निश्चय नयसे विचार किया जावे तो इस जीवके संसार नहीं है। यह तो कर्मोंसे भिन्न ही है।

तिण्णि य वसञ्जलीओ, छच्चेव य अंजलीउ पित्तस्स।
सिंभो पित्तसमाणो, लोहिदमद्धाढ्यं हवदि ॥१०३३॥
मुत्तं आढयमेत्तं, उच्चारस्स य हवंति छप्पत्था।
वीसं णहाणि दंता, बत्तीसं होंति पगदीए ॥ १०३४ ॥
किमिणो व वणो भरिदं, सरीरियं किमिकुलेहि वहुगेहिं।
सव्वं देहं अफ्फुं-, दिऊण वादा ठिदा पंच ॥१०३५॥
एवं सव्वे देह-, म्मि अवयवा कुणिमपुग्गला चेव।
एक्कंपि णत्थि अंगं, पूयं सुचियं च जं होज्ज॥१०३६॥

भावार्थ—इस देहमें सडी हुई मींजीसे भरे तीनसौ हाड़ हैं, तोनसौ ही संधिए हैं, नवसौ (स्नायु) नसें हैं, सातसौ छोटी (सिरा) नसें हैं, पांचसौ मांसकी डली हैं, चार नसोंके जाल हैं, सोलह कंडरा हैं, छः सिरामूल हैं, दो मांसकी रस्सी हैं, सात त्वचा हैं, सात कलेजे हैं, अस्सी लाख करोड़ रोम हैं, वक्राशय आमाशयमें तिष्ठती सोलह आंतोंकी पष्टि हैं, सात मलके आश्रय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, तीन स्थूणी हैं, एकसौ सात मर्मस्थान हैं, नव मल निकलनेके द्वार हैं, देहमें मस्तिष्क अपनी एक अंजली प्रमाण है, एक अंजली प्रमाण मेद धातु है। एक अंजली प्रमाण वीर्य है, मांसके भीतर चरबी या घी अपनी तीन अंजली प्रमाण है, पित्त छः अंजली प्रमाण है, कफ भी छः अंजली प्रमाण है, रुधिर आध आढ़क प्रमाण है मूत्र एक आढ़क प्रमाण है, आढ़ सेरका आढ़क होता है, मल छः सेर है, देहमें बीस नख हैं। बत्तीस दांत हैं। यह प्रमाण सामान्य कहा है, विशेष हीन व अधिक भी होता है, देशकाल रोगादिके निमित्तसे अनेक प्रकार होता है। सड़े हुए घावकी तरह बहुत कीड़ोंसे भरा हुआ यह देह है, सर्व देहको व्यापकर पांच पवन हैं। ऐसे इस देहमें सर्व ही अंग व उपांग दुर्गंध पुद्गल हैं। इस देहमें ऐसा एक भी अंग नहीं है जो पवित्र हो, सर्व अशुचि ही है।

जदि होज्ज मच्छियाप-त्तसरिसिया तयाए णो पिहिदं ।
को णाम कुणिमभरियं, सरीरमालद्धुमिच्छेज्ज ॥१०३७॥

भावार्थ—जो यह देह मक्खीके पर समान पतली त्वचासे ढकी न हो तो इस मैलसे भरे हुए शरीरको कौन स्पर्शना चाहेगा ?

परिदड्ढसव्वचम्मं पंडुरगत्तं मुयंतवणरसियं ।
सुठ्ठु वि दयिदं महिलं, दट्ठुं पि णरो ण इच्छेज्ज ॥१०३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—जो इस देहका सब चमड़ा जल जावे और सफेद शरीर निकल आवे और घावोंसे रस झड़ने लग जावे तो अपनी प्यारी स्त्री भी उसे देखना पसंद न करेगी।

इंगालो धोवंतो, ण हु सुज्झदि जहा पयत्तेण ।
सव्वेहिं समुद्ददेहिं सुज्झदि देहो ण धुव्वंतो ॥१०४३॥

भावार्थ—जैसे कोयलेको सर्व समुद्रके जलसे धोनेपर भी वह उजला नहीं होसक्ता वैसे देहको बहुत जलादिसे धोनेपर भी भीतरसे पसीना आदि मल ही निकलेगा।

सिण्हाणब्भंगुव्व-, ट्टणेहि मुहदंत अच्छिधुवणेहिं ।
णिच्चं पि धोवमाणो, वादि सदा पूदियं देहो ॥१०४४॥

भावार्थ—स्नान तथा अतर, फुलेल, उबटनसे धोनेपर व मुख, दांत, नेत्रोंके धोनेपर व नित्य स्नानादि करनेपर भी यह देह सदा दुर्गन्ध ही वमती है।

अन्तो वहिं च मज्झे व कोइ सारो सरीरगे णत्थि ।
एरंडगो व देहो णिस्सारो सव्वहिं चेव ॥ १०४६ ॥

भावार्थ—जैसे एरण्डकी लकड़ीमें कुछ सार नहीं है, वैसे इस मनुष्यकी देहमें भीतर बाहर कुछ भी सार नहीं है।

जदि दा रोगा एकम्मि, चेव अच्छिम्मि होंति छण्णउदी।
सव्वम्मि चेव देहे, होदव्वं कदिहि रोगेहिं ॥ १०५३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचेव य कोडीओ अट्ठासट्ठिं तहेव लक्खाइं ।
णवणवदिं च सहस्सा पंचसया होंति चुलसीदी ॥१०५४॥

भावार्थ—जो एक नेत्रमें ९६ (छानवे) रोग होते हैं, तो संपूर्ण देहमें कितने रोग होंगे । पांच करोड़ अडसठ लाख निन्याणवे हजार पांचसे चौरासी ५६८९९५८४ रोग देहमें उपजने योग्य होते हैं ।

रूवाणि कट्ठकम्मा-दियाणि चिट्ठंति सारवेंतस्स ।
धणिदं पि सारवेंत-स्स ठादि चिरं सरीरमिमं ॥१०५६॥

भावार्थ—काष्ठ व पत्थरकी मूर्तियें संवारी हुईं बहुत काल ठहर सक्ती हैं, परन्तु यह मनुष्यका देह अत्यंत संस्कार करते हुए भी बहुत देर नहीं ठहरता है ।

श्री पूज्यपादस्वामी सर्वार्थसिद्धिमें कहते हैं—

शरीरमिदमत्यन्ताशुचिशुक्रशोणितयोन्यशुचि संवर्धितमवस्करवत् अशुचिभाजनं त्वङ्मात्रप्रच्छादितम् अतिपूतिरसनिष्यन्दिस्रोतो विलम् अंगारवत् आत्मभावं आश्रितमपि आश्वेवापादयति । स्नानानुलेपनधूपप्रघर्षवासमाल्यादिभिरपि न शक्यमशुचित्वमपहर्त्तुमस्य ।"

भावार्थ--यह शरीर अत्यंत अशुचि है । वीर्य और रुधिरकी योनिमें अशुचि पदार्थोंसे बढ़ा है । मलभाजनके समान अशुचिका वर्तन है । ऊपरसे त्वचासे ढका है । इसके द्वारोंसे अत्यन्त अपवित्र मल बहा करता है । जैसे अंगारको हाथमें लेने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से हाथ जल जाता है, वैसे इस शरीरको अपना माननेसे अपना शीघ्र ही घात होता है। स्नान, विलेपन, धूप, वस्त्र, मालादि कोई भी पदार्थ इस देहकी अशुचिता दूर नहीं कर सकते हैं।

श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

भवन्ति प्राप्य यत्संगमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥ १८ ॥

भावार्थ—यह शरीर निरन्तर क्षुधादिसे पीड़ित रहता है व नाशवंत है, इसकी संगतिको पाकर पवित्र भी भोजन वस्त्रादि पदार्थ अपवित्र होजाते हैं। ऐसे नाशवंत व अपवित्र शरीरके लिये धनादिकी वांछा वृथा है।

श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रियः ॥ १५ ॥

भावार्थ—सर्व संसारके दुःखोंका मूल इस देहसे राग करना है। इसलिये आत्मज्ञानी इससे राग छोड़कर व इन्द्रियोंको संकोचकर अपने आत्मामें प्रवेश करते हैं।

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिम् ॥ ४२ ॥

भावर्थ—जो मूर्ख देहको आत्मा मान लेता है वह यह चाहा करता है कि शरीर सुन्दर बना रहे व मनोहर इन्द्रियोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदार्थ सदा प्राप्त होते रहें। तत्वज्ञानी इस शरीरसे छूटना ही चाहता है।

घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहेप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः ॥ ६३ ॥
जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥
नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं बुध्यते बुधः ॥ ६५ ॥
रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा।
रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः ॥ ६६ ॥

भावार्थ—जैसे मोटे कपड़ोंको पहननेपर भी कोई आपको मोटा नहीं मानता है, इसीतरह अपने शरीरको मोटा देख कर ज्ञानी अपने आत्माको मोटा नहीं मानता है। पुराने कपड़े देख-कर कोई अपनेको पुराना नहीं मानता है. इसी तरह अपने शरीरको पुराना देखकर बुद्धिमान् आत्माको पुराना नहीं मानता है। वस्त्रोंको नाश होते जानकर कोई अपना नाश नहीं मानता है वैसे देहको नाश होते देखकर बुद्धिमान् अपना नाश नहीं मानता है। वस्त्रको लाल देखकर कोई अपनेको लाल नहीं मानता है, वैसे देहको लाल देखकर कोई बुद्धिमान अपने आत्माको लाल नहीं मानता है। शरीरसे आत्मा भिन्न है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रविशद्गलितां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ ।
स्थितिभ्रांत्या प्रपद्यन्ते तममात्मानमबुद्धयः ॥ ६६ ॥

भावार्थ—समान आकार बना रहनेपर भी इस शरीररूपो सेनाके चक्रमें नए परमाणु मिलते हैं पुराने झड़ते हैं तौभी अज्ञानी इस शरीरको थिर मानकर अपना माना करता है ।

गौरः स्थूलः कृशो वाऽहमित्यंगेनाविशेषयन् ।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम् ॥ ७० ॥

भावार्थ—ज्ञानी जानते हैं कि शरीर ही गोरा, मोटा, दुबला होता है, आत्मा नहीं । आत्मा तो मात्र सदा ज्ञान-शरीरधारी है, वह पुद्गल नहीं, शरीर पुद्गल है ।

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना ।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥ ७४ ॥

भावार्थ—इस शरीरमें ही आत्मापनेकी भावना करनी अन्य २ देह प्राप्त करनेका हेतु है । तथा शरीरसे भिन्न आत्मामें ही आत्मपनेकी भावना करना इस शरीरसे छूटनेका उपाय है ।

दृढात्मबुद्धिर्देहादावुत्पश्यन्नाशमात्मनः ।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद्भृशम् ॥ ७६ ॥

भावार्थ—जो इस शरीरमें ही अपनेपनेकी गाढ़ बुद्धि रखते हैं वे अपना नाश जानकर निरन्तर डरते रहते हैं कि कहीं पुत्र मित्र आदिका वियोग न हो जाय, कहीं मेरा मरण न होजाय ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनमें कहते हैं—

अस्थिस्थूलतुलाकलापघटितं बद्धं शिरास्नायुभिः,
चर्माच्छादितमस्रसान्द्रपिशितैर्लिप्तं सुगुप्तं खलैः ।
कर्मारातिभिरायुरुच्चनिगलालग्नं शरीरालयं,
कारागारमवेहि ते हतमते प्रीतिं वृथा मा कृथाः ५९

भावार्थ—हे निर्बुद्धि ! यह शरीररूप घर तेरा बंदीघरके समान है इससे वृथा प्रीति मत कर । यह शरीररूपी कैदखाना हड्डीरूपी मोटे पाषाणोंमें गढ़ा हुआ है, नसोंके जालरूपी बंधनोंसे वेढ़ा हुआ चमड़ेसे छाया हुआ है, रुधिर व मांससे लिप्त है, इसे दुष्ट कर्मरूपी वैरोने रचा है। इसमें आयुकर्मरूपो मजबूत बेड़ी है ।

दीप्तोभयाग्रवातारिदारूदरगकीटवत् ।
जन्ममृत्युसमाश्लिष्टे शरीरे बत सीदसि ।। ६३ ।।

भावार्थ—जैसे दोनों तरफ आगसे जलते हुए एरंडके काष्ठके बीचमें प्राप्त कीड़ा महान दुखी होता है वैसे जन्म तथा मरणसे व्याप्त इस शरीरमें यह प्राणी कष्ट पाता है ।

उपायकोटिदूरक्ष्ये स्वतस्तत इतोन्यतः ।
सर्वतः पतनप्राये काये कोऽयं तवाग्रहः ।। ६९ ।।

भावार्थ—हे प्राणी ! तेरा इस शरीरमें कौनसा आग्रह है कि मैं इसकी रक्षा कर लूंगा, यह तो करोड़ों उपायोंके करनेसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी नहीं रहेगा। न आप ही कर सकता है, न दूसरा कोई बचा सकता है, यह तो अवश्य पतनशील है।

शरीरेऽस्मिन् सर्वाशुचिनि बहुदुःखेऽपि निवसन्,
व्यरंसीन्नो नैव प्रथयति जनः प्रीतिमधिकाम्।
इमां दृष्ट्वाप्यस्माद्विरमयितुमेनं च यतते
यतिर्याताख्यानैः परहितरतिं पश्य महतः ॥९७॥

भावार्थ—सर्व प्रकार अपवित्र और बहुत दुःखोंके देनेवाले इस शरीरमें रहता हुआ यह मानव इस देहसे विरक्त नहीं होता है, किंतु अधिक प्रीति करता है तथापि ऐसा देखकर साधुजन सार उपदेश देकर इस प्राणीको शरीरसे विरक्त करनेका यत्न करते हैं। महान पुरुषोंका अनुराग परहितमें रहा करता है ऐसा देखो। यह प्राणी शरीरके मोहसे कष्ट पावेगा इसीलिये संत पुरुष शिक्षा देकर इसको आत्मज्ञानपर आरूढ़ करनेका उद्यम करते हैं।

इत्थं तथेति बहुना किमुदीरितेन,
भूयस्त्वयैव ननु जन्मनि भुक्तमुक्तम्।
एतावदेव कथितं तव संकलय्य,
सर्वापदां पदमिदं जननं जनानाम् ॥ ९८ ॥

भावार्थ—ऐसा है वैसा है ऐसा बहुत कहनेसे क्या। हे जीव! तूने इस संसारमें शरीरको बार बार भोगा है और छोड़ा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। अब तुझे संकोच करके इतना ही कहा जाता है कि प्राणियों के लिये यह शरीर सर्व आपदाओंका स्थान है।

विमृश्योच्चैर्गर्भात्प्रभृति मृतिपर्यंतमखिलं
मुधाप्येतत् क्लेशाशुचिभयनिकाराघबहुलम्।
बुधैस्त्याज्यं त्यागाद्यदि भवति मुक्तिश्च जडधीः
स कस्त्यक्तुं नालं खलजनसमायोगसदृशम् ॥१०५॥

भावार्थ—ज्ञानी लोगोंके लिये यह शरीर त्यागने योग्य है; क्योंकि वे विचारते हैं कि यह सर्व शरीर गर्भसे लेकर मरण पर्यंत वृथा ही क्लेश, अपवित्रता, भय, पराभव, पाप आदिसे पूर्ण है। फिर जो इस शरीरके राग छोड़नेसे मुक्तिका लाभ हो तो ऐसा कौन मूर्ख है जो इसको त्याग करनेमें समर्थ न हो?

आदौ तनोर्जननमत्र हतेन्द्रियाणि,
कांक्षन्ति तानिविषयान् विषयाश्च मानं।
हानिप्रयासभयपापकुयोनिदाः स्युः,
मूलं ततस्तनुरनर्थपरम्पराणाम् ॥ १९५ ॥

शरीरमपि पुष्णन्ति सेवन्ते विषयानपि।
नास्त्यहो दुष्करं नृणां विषाद्वाञ्छन्ति जीवितम् ॥१९६॥

भावार्थ—प्रथम ही शरीरकी उत्पत्ति होती है इस शरीरमें इंद्रियां विषम विषयोंको चाहतीं हैं, वे विषयभोग महानपनेकी हानि करते हैं, महाक्लेशके कारण हैं, भयके करनेवाले हैं, पापके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपजानेवाले हैं व निगोदादि कुयोनिके दायक हैं। इसलिये यह शरीर ही अनर्थकी परम्पराका मूल कारण है। मूर्ख लोग कैसा न करने योग्य काम करते हैं, शरीरको पोषते हैं, विषयभोगोंको सेवते हैं, उनको विवेक नहीं, वे विष पीकर जीना चाहते हैं।

माता जातिः पिता मृत्युराधिव्याधी सहोद्गतौ।
प्रांते जन्तोर्जरा मित्रं तथाप्याशा शरीरके ॥२०१॥

भावार्थ—इस शरीरकी उत्पत्ति तो माता है, मरण इसका पिता है, मानसिक शारीरिक दुःख इसके भाई हैं, अंतमें जरा इसका मित्र है तोभी इस शरीरमें तेरी आशा है बड़ा आश्चर्य है।

शुद्धोप्यशेषविषयावगमोप्यमूर्तो,
प्यात्मन् त्वमप्यतितरामशुचीकृतोसि।
मूर्तं सदाऽशुचि विचेतनमन्यदत्र,
किंवा न दूषयति धिग्धिगिदं शरीरम् ॥२०२॥

भावार्थ—हे चिदानंद! तू तो शुद्ध है, सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, अमूर्तिक है तो भी इस जड़ शरीरने तुझे अपवित्र कर दिया है। यह शरीर मूर्तिक है, सदा अपवित्र चेतनारहित है, यह तो केशर कपूरादि सुगंध वस्तुओंको भी दूषित कर देता है। इस शरीरको धिक्कार हो।

हा हतोसितरां जन्तो येनास्मिस्तव सांप्रतम्।
ज्ञानं कायाऽशुचिज्ञानं तत्त्यागः किल साहसः ॥२०३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—हाय हाय! हे प्राणी! तू अत्यन्त ठगाया गया, नष्ट भया, तू शरीरके ममत्व करके अति दुःखी भया। अब तू विचार, यह शरीर अशुचि है, ऐसा जानना यही सच्चा ज्ञान है तथा इसका ममत्व तजना ही साहसका काम है।

श्री अमितिगति तत्वभावनामें कहते हैं—

संयोगेन दुरन्तकल्मषभुवा दुःखं न किं प्रापितो,
येन त्वं भवकानने मृतिजराव्याघ्रव्रजाध्यासिते।
संगस्तेन न जायते तव यथा स्वप्नेऽपि दुष्टात्मना।
किंचित्कर्म तथा कुरुष्व हृदये कृत्वा मनो निश्चलम् ॥१७॥

भावार्थ—जरा व मरण रूपी व्याघ्र समूहसे भरे हुए संसार वनमें महान पापको उत्पन्न करनेवाले इस शरीरके संयोगसे ऐसा कौनसा दुःख है, जो तूने प्राप्त नहीं किया है। अब तू अपने मनको निश्चलकर ऐसा काम कर जिससे तुझे स्वप्नमें भी इस दुष्ट शरीरका फिर संग न हो।

दुर्गंधेन मलीनसेन वपुषा स्वर्गापवर्गश्रियः
साध्यंते सुखकारिणा यदि तदा संपद्यते का क्षतिः॥
निर्माल्येन विगर्हितेन सुखदं रत्नं यदि प्राप्यते।
लाभः केन न मन्यते बत तदा लोकस्थितिं जानता ॥१८॥

भावार्थ—यह शरीर तो दुर्गंधमय अशुचि है। ऐसे शरीरसे यदि स्वर्ग व मोक्ष देनेवाली सुखकारी सम्पत्तियें प्राप्त होसकें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो क्या हानि है, उसके लिए यत्न करना ही चाहिये। यदि किसी निन्दनीक तुच्छ वस्तुके बदलेमें सुखदाई रत्न प्राप्त होसके तो लोककी मर्यादाको जानने वालेको लाभ क्यों न मानना चाहिए

एकत्रापि कलेवरे स्थितिधिया कर्माणि संकुर्वता।
गुर्वी दुःखपरंपरानुपरता यत्रात्मना लभ्यते॥
तत्र स्थापयता विनष्टममतां विस्तारिणीं संपदम्।
का शक्रेण नृपेश्वरेण हरिणा न प्राप्यते कथ्यताम्॥४३॥

भावार्थ—इस शरीरके साथ रहते हुए मूढ़ आत्माने स्थिर मानकर जो पापकर्म किए हैं उससे दुःखोंकी परम्परा इसने उठाई है। यदि यह इस शरीरसे ममता हटाले तो ऐसी कौनसी सम्पति है जो इसको प्राप्त न होसके। क्या इन्द्रकी, क्या चक्रवर्तीकी, क्या नारायणकी।

चित्रोपायविवर्धितोपि न निजो देहोपि यत्रात्मनो।
भावाः पुत्रकलत्रमित्रतनयाजामातृतातादयः॥
तत्र स्व निजकर्मपूर्ववशगाः केषां भवंति स्फुटं।
विज्ञायेति मनीषिणा निजमतिः कार्या सदात्मस्थिता॥१२॥

भावार्थ—अनेक प्रकारके उपयोंसे पालते रहनेपर भी जहां इस आत्माके साथ देह नहीं रह सक्ती—छूट जाती है तब पुत्र, स्त्री, मित्र, पुत्री, जमाई, पिता आदि कैसे इसके साथी रह सक्ते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। ये सब अपने २ कर्मके वश जानेवाले हैं, ऐसा जानकर बुद्धिमानको सदा आत्माके हितमें अपनी बुद्धि रखनी योग्य है। श्री शुभचंद्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

सर्वदैव रुजाक्रान्तं सर्वदैवाशुचेर्गृहम् ॥८॥
सर्वदा पतनप्रायं देहिनां देहपञ्जरम् ॥८॥

भावार्थ— इन जीवोंका देहरूप पींजरा सदा ही रोगोंसे व्याप्त सर्वथा अशुचिका घर व सदा ही पतनशील है।

तैरेव फलमेतस्य गृहीतं पुण्यकर्मभिः।
विरज्य जन्मनः स्वार्थे यैः शरीरं कदर्थितम् ॥६॥

भावार्थ—इस शरीरके प्राप्त होनेका फल उन्होंने ही लिया, जिन्होंने संसारसे विरक्त होकर अपने अपने आत्मकल्याणके लिए ध्यानादि पवित्र कर्मोंसे इसे क्षीण किया।

भवोद्भवानि दुःखानि यानि यानीह देहिभिः।
सह्यन्ते तानि तान्युच्चैर्वपुरादाय केवलम् ।११॥

भावार्थ—इस जगतमें संसारसे उत्पन्न जो जो दुःख जीवों को सहने पड़ते हैं,वे सब इस शरीरके ग्रहणसे ही सहने पड़ते हैं

कर्पूरकुंकुमागुरुमृगमदहरिचन्दनादि वस्तूनि।
भव्यान्यपि संसर्गान्मलिनयति कलेवरं नृणाम् ॥१२॥

भावार्थ—कपूर, केशर, अगर कस्तूरी, हरिचन्दनादि सुन्दर सुन्दर पदार्थोंको भी यह मनुष्योंका शरीर संसर्गमात्रसे मैला कर देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अजिनपटलगूढं पञ्जरं कीकसानाम्
कुथितकुणपगन्धैः पूरितं मूढ गाढम् ।
यमवदननिषण्णं रोगभोगीन्द्रगेहं
कथमिह मनुजानां प्रीतये स्याच्छरीरम् ॥१३॥

भावार्थ—हे मूढ प्राणी ! इस संसारमें मनुष्योंका देह चर्म पर्देसे ढका हुआ हाडोंका पिंजरा है। तथा बिगड़ी हुई राधकी दुर्गंधसे परिपूर्ण है। कालके मुखमें बैठाहुआ है। रोग रूपी सर्पों का घर है, ऐसा शरीर प्रीति करने योग्य कैसे हो सकता है।

जीवकी दुर्दशाका मूल कारण

संसारी जीव इसतरह जो संसार, शरीर, भोगमें तन्मय होकर अगणित कष्ट उठा रहा है और उनसे छूटनेका जरा भी यत्न नहीं करता इसका मूलकारण इसकी मिथ्या-वासना है जिसको कि जैनसिद्धान्तमें 'मिथ्यात्व' कहते हैं। इस मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जीवकी श्रद्धा इस तरह विकृत हो गई है कि वह शरीरको ही आत्मा समझ बैठा है अपने आत्मस्वरूपका लेश मात्र भी अनुभव नहीं करता, 'संसारकी विषयवासनाओंसे सुख नहीं मिलसकता, इन विषयवासनाओंको त्यागकर निराकुल निश्चिन्त होनेपर सुख प्राप्त होगा" इस यथार्थ बातपर इसको विश्वास नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा—सांसारिक विषयवासनाओंके जंजालसे छुड़ानेवाले वीतराग देव, निर्ग्रन्थगुरु और उनके उपदेशकी ओर यह जीव उसी मिथ्यात्ववासनाके कारण उन्मुख नहीं होता। इसी मिथ्याश्रद्धाके करण कुमार्गको सुमार्ग समझकर किसी पदार्थसे प्रेम करता है, उस पदार्थके छूट जानेपर दुःख मानता है और किसी वस्तुको अनिष्ट समझकर उससे द्वेष करता है, उसको बिगाड़नेकी चेष्टा करता, है लड़ता है झगड़ता है।

सारांश यह है कि संसारके समस्त अनर्थ इसी मिथ्यात्वके सहारे उत्पन्न होते हैं, फलते हैं, फूलते हैं, उनकी जड़ इसी मिथ्यात्वके कारण हरी बनी रहती है।

इस मिथ्यात्वके सामान्यसे ५ भेद बतलाये हैं—

१–विपरीत—यानी विपरीतश्रद्धा। जैसे गाय घोड़ा बकरी मुर्गा आदि जीवोंको मार कर हवन करनेमें धर्म समझना।

२–एकान्त—प्रत्येक पदार्थ नित्य, अनित्य आदि अनेक धर्मोंका समुदाय (मजमुआ) है किन्तु उसके किसी एक अंशको ही उसका पूर्ण रूप मान लेना। जैसे बौद्धधर्म पदार्थको सर्वथा क्षणिक ही मानता है।

३–विनय—हितकारक, हानिकारक देव, शास्त्र, गुरुमें कुछ भी विवेक न करके सब सच्चे झूठे देव शास्त्र गुरुको एक जैसा समझकर सबका एक जैसा धार्मिक विनय करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४–संशय—पदार्थोंके स्वरूपका यथार्थ निर्णय न करके संदिग्ध (शकी) बना रहना, दृढनिश्चयी न होना; दुविधारूप विचार बनाये रखना।

५–अज्ञान—सांसारिक बातोंमें कुशल जानकार होना किन्तु पारमार्थिक विषयमें, आत्माके कर्तव्य अकर्तव्यकी बाबत, धर्म, अधर्म, पुण्य पाप लोक परलोक आदिके विषयमें अज्ञानी बने रहना।

इन ही ५ मिथ्यात्वोंके क्रियावादी, अक्रियावादी आदि और भी अनेक भेद हो जाते हैं तथा अन्य अपेक्षाओंसे भी इनका विविध विवरण ग्रन्थोंमें बतलाया गया है। सारांश यह है कि आत्मा, संसार, मोक्ष, इनके कारण कलापोंके विषयमें सत्य श्रद्धानसे दूर रहनेवाले जितने भी तरहके विविध भाव हैं वे सब मिथ्यात्वके स्रोतसे उत्पन्न हुई धाराओंके रूपमें मिथ्यात्व रूप ही हैं।

अतः सत्य पथपर आनेके लिये जीव जिस समय आत्माकी अनुभूति रूप सत्य श्रद्धा (सम्यक् श्रद्धा, सम्यक्त्व, सम्यग्दर्शन आदि किसी भी नामसे कहिये) की ओर उन्मुख होता है तब ही उस मिथ्यात्व कर्मसे छूटकर परमार्थके सत्पथपर आता है।

सम्यक्त्वके सन्मुख होनेवाला जीव क्या कुछ करता है इस विषयका सुन्दर विवेचन स्व० श्री पं० टोडरमलजीने अपने 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थमें किया है उपयोगी समझ कर यहांपर उसका उल्लेख करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब सम्यकत्वके सन्मुख जो मिथ्यादृष्टि है उसका निरूपण करते हैं किसीके कोई मन्द कषायादिक कारणको पाकर ज्ञानावरणादि कर्मों का क्षयोपशम होता है उससे तत्वविचार करनेकी शक्ति होती है। और मोह मंद हो जाने से तत्व विचारमें प्रयत्नशील होता है। तथा बाह्य निमित्त देव, शास्त्र, गुरू आदिकका लाभ होने से सत्य उपदेश का लाभ होता है। तथा अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्ग, देव, गुरू, धर्मादिक, जीवादितत्व, अपने पर अथवा अपने हितकारी अहितकारी भावों आदिके उपदेशोंसे सावधान होकर इस प्रकार विचार करता है—"अरे मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं थी मैं भ्रम से भूल कर पर्याय में ही तन्मय हुआ था। किन्तु, इस पर्याय की स्थिति भी थोड़े ही काल की है। यहां मुझे सब निमित्त मिले हैं अतः मुझे इनमें तो मेरा ही लाभ मालूम होता है।" इस तरह विचार कर जो उपदेश सुना था उसके निर्दारण का प्रयत्न करता है निद्धारण भी उद्देश, लक्षण निर्देश और परीक्षा के द्वारा होता है, इसकेलिए पहिले तो उनके नाम सीखे फिर उनके लक्षण समझे फिर 'इस प्रकार संभव है या नहीं' ऐसे विचारों को लेकर परीक्षा करे। उनमें भी नाम सीख लेना और लक्षण समझ लेना यह दोनों तो उपदेश के अनुसार होते हैं। जैसा उपदेश दिया वैसा याद कर लिया। किन्तु परीक्षा करनेमें अपने विवेक की आवश्यकता है अतः विवेकसे एकान्त में अपने मनमें सोचे कि उपदेश जैसा दिया है वैसा है या अन्यथा है। अनुमानादिक प्रमाणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेभी उसका निश्चय करे कि उपदेश तो इस प्रकार है यदि ऐसे न माना जायगा तो ऐसा हो जायगा इसमें प्रबल युक्ति कौनसी है और निर्बल युक्ति कौनसी है। जो प्रबल युक्ति मालूम पड़े उसे सत्य समझे, और यदि उपदेश से अन्यथा सत्य मालूम हो या सन्देह रहे या निर्द्धारण न हो सके तो फिर जो विशेषज्ञानी हों उनसे पूछे। वे जो उत्तर दें उसको विचारे। इस तरह जब तक निर्द्धारण न हो सके तब तक प्रश्न करे। अथवा समान बुद्धिके धारकोंसे अपना जैसा विचार हुआ हो वैसा कहे। प्रश्नोत्तर में निरूपित पदार्थ को एकान्त में विचारे। इस प्रकार अपने अन्तरङ्गमें उपदेशके अनुसार निर्णय होकर जब तक वस्तु-स्वरूप प्रतिभासित न हो तब तक इसी प्रकार प्रयत्न करे। और यदि अन्य-मतियों द्वारा कल्पित तत्वोंके उपदेशसे जैन उपदेश अन्यथा भासित हो, उसमें संदेह हो, तो भी पहिले की तरह प्रयत्न करे। इस तरह प्रयत्न करने पर जो जिन देवका उपदेश है वही सच्चा है मुझको भी ऐसा ही भासित होता है इस प्रकार निर्णय होता है, क्योंकि जिनदेव अन्यथावादी नहीं हैं।

प्रश्न—यदि जिनदेव अन्यथावादी नहीं हैं। तो जैसा उनका उपदेश है वैसा ही श्रद्धान कर लेना चाहिये फिर परीक्षा क्यों की ?

उत्तर—परीक्षा विना किये ही यह मानना ठीक है कि जिन देवने ऐसा कहा है सो सत्य है परन्तु उनका भाव स्वयं को भासित नहीं होता और भाव भासे बिना निर्मल श्रद्धान नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस बात की प्रतीति किसीके वचनोंसे की जाती है उस बात की अन्य के वचनोंसे अन्यथा प्रतीति हो सकती है अतः शक्ति की ? (भक्ति की) अपेक्षा वचनोंसे की गई प्रतीति अप्रतीति के समान हैं। लेकिन जिसका भाव भासित हो चुका है उसे फिर अन्यथा नहीं मान सकता। इसलिये भाव भासित होने पर जो प्रतीति होती है वही सच्ची प्रतीति है। यदि यह कहा जायगा कि पुरुष की प्रमाणता से वचन प्रमाण माने जाते हैं तो प्रामाणिकता स्वयं नहीं होती उसके किन्हीं वचनों की परीक्षा पहिले करली जाती है तब पुरुष की प्रामाणिकता होती है।

प्रश्न—उपदेश तो अनेक प्रकार है किस प्रकार की परीक्षा की जायगी।

उत्तर--उपदेश में कोई उपादेय और कोई हेय तत्त्व निरूपित किया जाता है। और इन उपादेय और हेय तत्वों की परीक्षा कर लेना चाहिये; क्योंकि इनमें अन्यथा-पन होने पर अपना अकल्याण होता है। उपादेय को हेय और हेय को उपादेय मान लेने पर बुरा होता है।

प्रश्न—स्वयं परीक्षा न करके भी जिन-वचनों के आधारसे ही उपादेय को उपादेय और हेयको हेय माने तो क्या बुराई है ?

उत्तर—अर्थ का भाव मालूम हुए विना वचन का अभिप्राय नहीं जाना जाता। यह तो मान सकता है कि मैं जिन वचनानुसार ही मानता हूँ परन्तु पदार्थ की प्रतीति होने पर उसमें विप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रीतता हो जाती है। लोक में नौकर को किसी काम को भेजिये यदि उस कामका वह भाव जानता है तो कार्यको सुधार कर कर लायगा अन्यथा कहीं चूक हो जायगी। इसलिये भावकी प्रतीति के लिए हेय और उपादेय तत्वों की परीक्षा अवश्य करनी चाहिए।

प्रश्न—यदि परीक्षा अन्यथा हो जाये तो क्या करना चाहिए।

उत्तर—जिनवचन और अपनी परीक्षा इनकी समानता हो जाय व ततो परीक्षा को सत्य समझना चाहिए और जब तक यह बात न हो तब तक जैसे कोई लेखा करने वाला जब तक उसकी विधि नहीं मिलती तब तक अपनी चूक ही ढूंढ़ता है उसी प्रकार यह अपनी परीक्षा में विचार ही किया करता है। तथा जो ज्ञेय तत्व है उनकी परीक्षा होसकती है तो करे अन्यथा यह अनुमान करना चाहिए कि जब हेय उपादेय तत्व ही अन्यथा नहीं कहे तब ज्ञेय तत्व अन्यथा क्यों कहेंगे। जैसे कोई प्रयोजन रूप कार्यों में झूठ नहीं बोलता तो अप्रयोजन में झूंठ क्यों बोलेगा। इसलिए ज्ञेय तत्वोंका स्वरूप परीक्षासे तथा आज्ञासे भी समझना चाहिये। उनका यथार्थ स्वरूप यदि प्रतिभासित न हो तब भी दोष नहीं है। इसलिए जैन शास्त्रोंमें जहां तत्वादिक का निरूपण किया है वहां तो हेतु युक्ति आदिसे जिस प्रकार इसके प्रतीति हो वैसे कथन किया है। तथा त्रिलोक गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिक का कथन आज्ञानुसार किया है इसलिए हेयोपादेय तत्वोंकी परीक्षा करना योग्य है उस परीक्षा से जीवादिक द्रव्य और तत्वों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को पहिचानना चाहिए। त्यागने योग्य मिथ्यात्व रागादिक और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिकों स्वरूप पहिचानना चाहिये निमित्ति नैमित्ति कादिकों को यथावत पहिचानना चाहिये। इस प्रकार जिनके जाननेसे मोक्ष मार्गमें प्रवृत्ति हो उसे अवश्य जानना चाहिये। अतः इनको तो परीक्षा करना ही चाहिए सामान्य रूप सेतो हेतु और युक्तिके द्वारा इनको जानना चाहिए तथा विशेष रूपसे प्रमाण नय निर्देश स्वामित्वादि तथा सत् संख्यादि द्वारा जानना चाहिए। अपनी बुद्धि और निर्मित्त मिलनेके अनुसार इनको सामान्य और विशेष रूपसे जानना चाहिये।

तथा इस जाननेमें सहायक गुण-स्थान मार्गणादिक पुराणादिक, व्रतादिक क्रियाओंको जानना योग्य है। यदि परीक्षा हो सके तो उनकी परीक्षा भी करनी चाहिए, न हो सके तो आज्ञानुसार ही मानना चाहिये। इस तरह ज्ञानके लिये कभी स्वयं ही विचार करता है, कभी शास्त्र पढ़ता है कभी अभ्यास करता है कभी सुनता है कभी प्रश्नोत्तर करताहै अपने कार्य करने का उसे बहुत हर्ष है इसलिए अन्तरङ्ग प्रीतिसे उसका समाधान करता है इस प्रकार साधन करते हुये जब तक सच्चा तत्व श्रद्धान नहीं होता, यह इसी प्रकार है इस प्रकारके विश्वासके साथ जीवादि तत्वों का स्वरूप भासित नहीं होता, पर्यायमें अंहबुद्धि की तरह केवल आत्मामें अंह बुद्धि नहीं होती; हित अहित रूपअपने भाव नहीं पहिचानता तबतक वह सम्यकत्वके सन्मुख मिथ्य दृष्टि है थोड़ेही समयमें वह सम्यक्त्वको प्राप्त होगा। इसही भव या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य पर्यायमें सम्यक्त्वको पावेगा इस भवमें अभ्यास करके परलोकमें यदि तिर्यंचादि गतिमें भी जाये तो वहाँ संस्कारके बलसे देव गुरु और शास्त्रका निमित्त [मिथ्यात्व कर्मका अनुभाग हीन हो जाता है]

न मिलनेपर भी सम्यक्त्व हो जाता है क्योंकि ऐसे अभ्यासके बलसे मिथ्यात्व कर्मका अनुभाग हीन हो जाता है। और जहाँ उसका उदय नहीं वहीं सम्यक्त्व हो जाता है। मूल कारण यही है। देवादिक तो बाह्य निमित्त हैं। इस तरह मुख्यतासे इन ही के निमित्तसे सम्यकत्व होता है। किन्तु तारतम्यसे वर्तमानमें इनका निमित्त न भी हो तो पूर्व अभ्यास और संस्कारसे सम्यक्त्व हो सकता है सिद्धान्तमें ऐसा सूत्र कहा है—

"तन्निसर्गादधिगमाद्वा" (त० सू० १–२)

यह सम्यग्दर्शन निसर्ग तथा अधिगमसे होता है। देव शास्त्र और बाह्य निमित्तके बिना जो होता है वह निसर्गसे हुआ कहलाता है। और जो देवादिकोंके निमित्तसे होता है वह अधिगमसे हुआ कहलाता है। तत्व विचारकी महिमा देखो कि तत्वविचार रहित जीव देवादिककी प्रतीति करे, बहुत शास्त्रोंका अभ्यास करे, व्रतादि तपश्चरणादि करे उसके तो सम्यक्त्व होनेका अधिकार नहीं और तत्वविचारवाला इनके बिना ही सम्यक्त्वका अधिकारी हो जाता है तथा कोई जीव तत्व विचार के पहिले ही किसी कारणसे देवादिककी प्रतीति करता है व्रत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तप अङ्गीकार करता है और बादमें तत्व विचार करता है। परंतु सम्यक्त्वका अधिकारी तत्व विचारके होनेपर ही होता है। तथा किसीके तत्व विचार होनेपर भी तत्व प्रतीति न होनेसे सम्यक्त्व तो नहीं होता किन्तु व्यवहार धर्मकी रुचि प्रतीति होने से देवादिककी प्रतीति हो जाती है अथवा तप व्रत अङ्गीकार करता है किसीके देवादिककी प्रतीति और सम्यक्त्व साथ २ होते हैं। और व्रत तप सम्यक्त्वके साथ भी होते हैं या नहीं भी होते हैं किन्तु देवादिककी प्रतीतिका तो नियम है इसके विना सम्यक्त्व नहीं होता। व्रतादिकका नियम नहीं है। बहुतसे जीवतो पहले सम्यक्त्व होनेके बाद फिर व्रतादिक धारण करते हैं किसीके साथ २ भी हो जाता है। इसप्रकार यह तत्व विचारवाला जीव सम्यक्त्वका अधिकारी है। लेकिन इसके सम्यक्त्व होता ही होता है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि शास्त्रमें सम्यक्त्व होनेसे पहिले निम्न लिखित पंच लब्धियोंका होना बतलाया है।

पाँच लब्धियोंका स्वरूप—

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण ये लब्धियां हैं। जिसके होने पर तत्वविचार हो सके ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षयो-पशम होता है। उदय कालको प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकोंके निषेकोंकाउदयाभावी क्षय और अनागत कालमें उदय आने योग्य उन्हीं कर्मोंकी सत्तामें रहना रूप उपशम और देश घाती स्पद्धकोंका उदय ऐसी कर्मकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्थाको क्षयोपशम कहते हैं और उसकी प्राप्तिका नाम क्षयोपशम लब्धि है।

मोहके मंद उदय होनेसे मन्द कषाय रूप जो भाव हों जिनके होनेपर तत्व विचार हो सके यह विशुद्धिलब्धि है।

जिनदेवके द्वारा उपदिष्ट तत्वका धारण करना विचार करना यह देशनालब्धि है।

जहाँ नरकादिमें उपदेशका निमित्त नहीं होता वहाँ पूर्व संस्कारसे होता है। कर्मोंकी पूर्व सत्ता घट कर अन्तः कोटा-कोटी सागर प्रमाण रह जाय और नवीन बंध अन्तः कोटा-कोटि प्रमाण के संख्यातवें भाग हो वह भी उस लब्धि कालसे लगाकर क्रमसे घटता हुआ हो कितनी ही पाप प्रकृतियों का बंध क्रमसे मिटता जाय इत्यादि योग्य अवस्थाका होना प्रायोग्य लब्धि है। यह चारों लब्धि भव्य और अभव्य दोनोंके होती हैं। इन चारों लब्धियोंके होनेपर सम्यक्त्व होता है तो होता है, नहीं तो नहीं भी होता।

इस प्रकार लब्धिसारमें बतलाया है। इसलिये तत्वविचारवाले के सम्यक्त्व होनेका नियम नहीं है। जैसे किसीको हितकी शिक्षा दी गई। उसको समझकर वह विचार करता है कि 'यह शिक्षा दी है तो किस प्रकार है' बादमें विचारते हुए उसको "ऐसे ही है" यह प्रतीति हो जाता है, अथवा अन्यथा विचार हो जाता है तथा अन्य विचारमें लगकर उस शिक्षाका निर्धारण न करे तो प्रतीति भी नहीं होता। उसी प्रकार श्री गुरुने तत्वोपदेश दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसको समझकर विचार करता है कि यह उपदेश दिया है सो किस प्रकार है ? पुनः बादमें विचार करनेसे उसको "ऐसे ही है" ऐसी प्रतीति हो जाती है। अथवा अन्य विचार होता है तथा अन्य विचारमें लगकर उपदेशका निर्धारण नहीं होता तो प्रतीति नहीं होती ऐसा नियम है। इसका प्रयत्न तो तत्वविचार करना मात्र ही है।

तथा पांचवी करण लब्धि होनेपर सम्यक्त्व होता ही है। अतः जो पहले चार लब्धि कहीं थीं वे तो होती ही हैं, और अन्तर्मुहूर्तमें जिसके सम्यक्त्व होने वाला हो उस ही जीवके करण लब्धि होती है। इस करण लब्धिवालेके बुद्धिपूर्वक इतना ही प्रयत्न होता है कि जिस तत्वविचारमें उपयोगको तद्रूप हो कर रमाता है, उससे समय २ पर परिणाम निर्मल होते जाते हैं। जैसे किसीको उपदेशका विचार ऐसा निर्मल होने लगा जिससे शीघ्र ही उसकी प्रतीति उसपर हो जायेगी। उसी प्रकार तत्वोपदेश ऐसा निर्मल होने लगा जिससे इसके शीघ्र ही उसकी प्रतीति हो जायगी। तथा करण-लब्धिमें होनेवाले परिणामोंका तारतम्य केवल-ज्ञान हो जानता है करणानुयोगमें उसका निरूपण किया है।

इस करणलब्धिके तीन भेद हैं अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इसका विशेष व्याख्यान तो लब्धिसारसे जानना चाहिए यहाँ तो संक्षेपसे बतलाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण करणलब्धि वाले जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा यह तीन नाम हैं। यहाँ करण नाम परिणामका है, जहाँ पहिले और पिछले समयोंके परिणाम समान हों वह अधःकरण है जैसे किसी जीवके परिणाम उस करणके पहिले समयमें अल्प विशुद्धताको लेकर हुए, बादमें समय २ अनन्त गुणी विशुद्धता से बढ़ते गये तथा उसके जैसे द्वितीय तृतीयादि समयमें परिणाम हों वैसे परिणाम किन्हीं जीवोंके प्रथम समयमें हों। और उससे समय २ अनन्तगुणी विशुद्धतासे बढ़ते हुए हैं। इस प्रकार अधः प्रवृत्त करण समझना चाहिये।

तथा जिससे पहिले और पिछले समयोंके परिणाम किसी भी तरह समान न हों, अपूर्व ही हों। अधः करणकी तरह जैसे पहिले समयमें हों वैसे द्वितीयादि किसी भी समयमें न हों, बढ़ते ही हों इस करणमें जिन जीवोंके पहिला समय ही हो उन अनेक जीवोंके परिणाम परस्पर समान भी होते हैं और हीन अधिक विशुद्धता लिये हुए भी होते हैं। परन्तु यहाँ इतना विशेष है, कि प्रथम समयवर्ती जीवके उत्कृष्ट परिणामोंसे भी द्वितीयादि समय वाले जीवोंके जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धताको लिये हुए होते हैं। इसी प्रकार जिनको करण माड़े हुए द्वितीयादि समय हुआ हो उनके उस समय वालोंके तो परिणाम परस्पर समान और असमान होते हैं परन्तु ऊपरके समय वालोंके परिणाम उनके समान सर्वथा नहीं होते हैं, अपूर्व ही होते हैं। यह अपूर्वकरण समझना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसमें समान-समयवर्ती जीवोंके परिणाम समान ही हों, निवृत्ति अर्थात् परस्पर भेदसे रहित हों। जैसे इस करणके पहिले समयमें सब जीवोंके परिणाम परस्पर समान ही होते हैं ऐसे ही द्वितीयादि समयमें परस्पर समयमें समानता समझना चाहिये। किन्तु प्रथमादि वालोंसे द्वितीयादि समय वालोंके परिणाम अनन्तगुणी विशुद्धता लेकर होते हैं। इस प्रकार अनिवृत्ति करण समझना चाहिये। इसतरह यह तीन करण हुए।

इन तीन करणोंमें पहिले अन्तर्मुहूर्त्त काल पर्यंत अधःकरण होता है उसमें चार आवश्यक होते हैं (१) समय २ अनन्तगुणी विशुद्धता होती है। (२) एक अन्तर्मुहूर्त्त पर्यंत नवीन बंधकी स्थिति घटती जाती है यह स्थिति बंधापसरण है (३) प्रति समय अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग अनन्तवें भाग होता है इत्यादि प्रकार चार आवश्यक होते हैं उसके बाद अपूर्वकरण होता है। उसका करण अधःकरणके कालके संख्यातवें भाग है उसमें यह आवश्यक और होते हैं। सत्तामें स्थित कर्मकी स्थिति को एक अन्तर्मुहुर्त्तके द्वारा घटाता है उसे स्थिति काण्डकघात कहते हैं। उससे छोटे एक अन्त र्मुहुर्त्त के द्वारा पूर्व कर्मका अनुभाग घटाता है यह अनुभाग कांडकघात है, गुण श्रेणीके कालमें क्रमसे असंख्यात गुणे २ कर्मोंको निर्जरा-योग्य करना यह गुण श्रेणी निर्जरा है। गुण-संक्रमण यहाँ होता नहीं है। अन्यत्र जहाँ अपूर्व करण होता है वहाँ होता है, इस तरह अपूर्व करण होनेके बाद अनिवृत्ति करण होता है उसका काल अपूर्व करणके संख्या-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तवें भाग है। उसमें पूर्वोक्त आवश्यक सहित कितना ही समय जानेके बाद अनिवृत्ति करण करता है। अर्थात् उन परमाणुओं को अन्य स्थिति रूप परिणमाता है। यह अन्तर करण कहलाता है। अन्तर करणके बाद उपशम करण करता है। अर्थात् अन्तर करणके द्वारा जिन निषेकोंका अभाव किया गया था उनके ऊपर जो मिथ्यात्वके निषेक हैं उनको उदय न आने योग्य करता है। इत्यादि क्रियासे अनिवृत्तिके करणके अन्त समयके अनन्तर जिन निषेकोंका अभाव किया था जब उनका उदय काल आया तो निषेकों के न होनेसे मिथ्यात्वका उदय नहीं हुआ।

अतः प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। अपूर्वकरण के बाद यह जीव जब अनिवृत्तिकरण करने लगता है तब उसके फल स्वरूप भी वे ही बातें होती हैं जो अपूर्वकरण के होती थीं। लेकिन यहांके स्थिति कांडक पहिलेके स्थिति-कांडकोंसे विशेष प्रकारके होते हैं इन विशिष्ट प्रकारके स्थितिकांडक आदिको करता हुआ यह जीव बहु भाग (समय) विता देता है। इस तरह जब अनिवृत्ति करण का संख्यातवां भाग (काल) अवशिष्ट रह जाता है तब यह दर्शन मोहका उपशमन करने के लिए अन्तरकरण विधान करता है इस समय भी स्थिति-कांडकादि कार्य होते हैं और वे अनिवृत्तिकरण के बहु-भागके अन्त समयमें होने वाले स्थिति-कांडकादि से विशिष्ट होते हैं। यहां अन्तरकरण विधान का मतलब है दर्शन मोहकी स्थितिमें अन्तर कर देना और वह अन्तर मिथ्यात्व के बीच कुछ निषकों को ऊपर नीचे निक्षेपण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर देना होता है। मतलब यह है कि जब यह जीव अन्तर करण करने लगता है तब मिथ्यात्वके प्रारम्भिक अन्तर्मुहूर्तमात्र निषेकों को छोड़ कर नीचेके निषेकोंमें फेंक देता है, कुछ को ऊपरके निषेकोंमें फेंक देता है इस तरह मिथ्यात्व को अन्तर्मुहूर्त तक उदय न आने योग्य करता है इस विधानसे मिथ्यात्व का जो प्रवाह चल रहा था वह अन्तर्मुहूर्त के लिये रुक जाता है तब अन्तर्मुहूर्त तक कोई निषेक उदय नहीं आता अतः मिथ्यात्वका पूर्ण उपशमन होने से उमशमसम्यग्दर्शन प्रकट होता है। इसी को प्रथमोपशम सम्यक्व कहते हैं दृष्टान्त के लिए यों समझिए कि १० आदमी पंक्ति बद्ध होकर १-२ मिनिटके अन्तरसे किसी दरवाजे से निकल रहे हैं निकलते समय चौथे और पांचवे नम्बर के दो आदमियों को वहां से निकाल कर एक को तीन आदमियों की पहिली लाइनके बराबर खड़ा किया और दूसरेको पांच आदमियों की दूसरी लाइनके, बराबर खड़ा किया और इन छहों (दूसरी लाइनके) आदमियों से यह कह दिया कि पहिली लाइन के निकलते ही तुम मत निकलना बल्कि चौथे और पाचवें आदमी के नम्बरको टालकर निकलना। इतने में पहिली लाइनके आदमी अपने तीन मिनटमें दरवाजे से बाहर होगये अब चौथे और पाँचवें आदमी की जगह खाली पड़ी रहने से दो मिनट तक कोई नहीं आया। अब दो मिनट तक जो शान्ति रही यही प्रथमोपशम सम्यक्त्व का समय समझना चाहिए। पहिली और दूसरी लाइन को मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थिति अथवा नीचे के और ऊपरके निषेक समझना चाहिये। और दशों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदमियों की पंक्ति-बद्ध लाइन को मिथ्यात्व का प्रवाह समझना चाहिये। बीचके दो आदमी अन्तर करण द्रव्य समझना चाहिये दूसरी लाइन के आदमियोंको दूसरी लाइन के तुरन्त न आने को आज्ञा उपशम-करण समझना चाहिये। यह कथन अनादि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा है। आदि मिथ्यादृष्टि दर्शन मोह की तीनों प्रकृतियों का अन्तर-करण करता है। इस तरह यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व मिथ्यात्व प्रकृतिके तीन टुकड़े कर देता है कुछ मिथ्यात्वरूप, कुछ सम्यक्त्व रूप और कुछ मिश्ररूप अन्तरमुहूर्त बाद पुनः इनमें से किसी एक का उदय अवश्य होता है और उदयानुसार पहिले, दूसरे तीसरे या चौथे गुण-स्थान पर पहुंचता है।

अनादि मिथ्यादृष्टि के सम्यक्त्वमोहनीय मिश्रमोहनीय को सत्ता नहीं हैं इसलिए वह एक मिथ्यात्व कर्म को ही उपशमाकर उपशम सम्यग्दृष्टि होता है तथा कोई जीव सम्यक्त्व पाकर पीछे भ्रष्ट होता है उसको भी दशा अनादि मिथ्यादृष्टि की-सी हो जाती है।

प्रश्न—परीक्षा करके तो जो तत्व श्रद्धान किया था उसका अभाव कैसे हो जाता है।

उत्तर-जैसे किसीने किसी पुरुषको शिक्षा दी, उसकी परीक्षा कर "ऐसे ही है" उसको ऐसे विश्वास भी हुआ था फिर किसी प्रकार से उसका विचार बदल गया। अतः उस शिक्षा में उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संदेह होगया कि "इस तरह है" या "इस तरह है" अथवा न जाने किस तरह है" अथवा उस शिक्षा को झूंठ समझकर उसके विरुद्ध हो गया तब उसको यह विश्वास न रहा। अथवा पहिले तो अन्यथा विश्वास था ही बीचमें शिक्षाके प्रभावसे यथार्थ प्रतीति हुई थी अब उस शिक्षा पर विचार किए हुए बहुत काल हो गया तब उसका जिस प्रकार पहिले अन्यथा प्रतीत थी, वैसे ही स्वयंमेव होगई, तब उस शिक्षाकी प्रतीति का अभाव हुआ। अथवा पहिले तो यथार्थ प्रतीति की पीछे न तो कुछ अन्यथा विचार किया, न बहुत काल हुआ परन्तु वैसे ही कर्मोदय से होनहार के अनुसार स्वयं ही उस प्रतीति का अभाव होकर अन्यथापन होगया। इस तरह अनेक प्रकार से उस शिक्षा की यथार्थ प्रतीति का अभाव होता है। उसी प्रकार जिनदेव का तत्वादि रूप उपदेश हुआ उसकी परीक्षा से उसके 'ऐसा ही है' ऐसा श्रद्धान हुआ। बादमें कहे हुये पहिले अनुसार अनेक प्रकार से उस पदार्थ-श्रद्धान का अभाव होता है। यह कथन स्थूलता से दिखलाया है। तारतम्यसे केवल-ज्ञानमें प्रतिभासित होता है कि इस समय श्रद्धान है और इस समय नहीं है। क्योंकि यहां मूलकारण मिथ्यात्वकर्म है। उसका उदय होनेपर अन्य विचारादिक कारण मिलें या न मिलें सम्यक् श्रद्धानका अभाव स्वयं ही होता है और यदि उसका उदय न हो तो अन्य कारण मिले या न मिले सम्यक् श्रद्धान स्वयं हो हो जाता है। लेकिन इस अन्तरंग सूक्ष्म-दशाका ज्ञान छद्मस्थको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं होता। इस लिए अपनी मिथ्या या सम्यक् रूप अवस्थाके तारतारम्यका निश्चय उसे नहीं होता। वह तो केवलज्ञानमें ही झलकता है। इसी अपेक्षा गुण-स्थानोंका पलटना शास्त्रोंमें बताया है इसप्रकार सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होनेवालेको सादिमिथ्या-दृष्टि कहते हैं। उसके भी पुनः सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेपर पूर्वोक्त पाँच लब्धियाँ होती हैं। इतना विशेष है कि किसी जीवके दर्शन मोहकी तीन प्रकृतियोंकी सत्ता होती है उसका उपशमन कर प्रथमोपशम सम्यक्त्वी होता है अथवा किसीके सम्यक्त्व मोहनीयका उदय होता है, दो प्रकृतियोंका उदय नहीं होता तो तो वह क्षयोपशम सम्यक्त्वी होता है। इसके गुण-श्रेणी आदि क्रिया तथा अनवृत्तिकरण नहीं होते। यदि उसके मिश्र मोहनीयका उदय होता है, शेष दो प्रकृतियोंका उदय नहीं होता तो वह मिश्र गुणस्थानको प्राप्त होता है। इसके तीन करण नहीं होते। इस तरह मिथ्यात्व छूटनेपर सादि मिथ्यादृष्टिकी दशा होती है।

क्षायिक सम्यक्त्वको वेदकसम्यग्दृष्टि ही प्राप्त करता है इस लिए इसका कथन यहाँ नहीं किया है। इस प्रकार सादिमिथ्या-दृष्टिका जघन्यकाल तो मध्य अन्तमुर्हुतमात्र है और उत्कृष्ट ढाई पुद्गल परावर्तनमात्र है। परिणामोंकी विचित्रता देखो कोई जीव तो ग्यारहवें गुण स्थानमें यथाख्यातचारित्र प्राप्त करके पुनः मिथ्यादृष्टि होकर किंचित् ऊन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल तक संसारमें घूमता है, और कोई नित्य निगोदसे निकल मनुष्य होकर मिथ्यात्वसे छूटनेके बाद अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञानको प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं। इस तरह समझकर अपने परिणामोंके बिगड़नेका भय रखना चाहिए और उनके सुधारका उपाय करना चाहिए।

इस सादि मिथ्यादृष्टिके थोड़े समय तक मिथ्यात्वका उदय रहता है तो इसका वाह्य जैनीपना नष्ट नहीं होता तथा तत्वों का अश्रद्धान भी व्यक्त नहीं होता और बिना विचार किये ही या थोड़े ही विचारसे सम्यक्त्वकी पुनः प्राप्ति हो जाती है। यदि बहुत काल तक मिथ्यात्वका उदय रहता है तो जैसी अनादि मिथ्यादृष्टिकी दशा होती है वैसी इसकी दशा होती है। गृहीत मिथ्यात्वको भी ग्रहण करता है। निगोदादिकमें भी सड़ता है उसकी कुछ मर्यादा नहीं रहती है।

कोई जीव सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होकर सासादन होता है वहां वह जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे छः आवली प्रमाण काल तक रहता है। इसके परिणामोंकी दशा वचनों द्वारा नहीं कही जासकती। अल्प कालमें इस प्रकारके परिणाम होते हैं जो केवल ज्ञान-गम्य है। सासादनमें अनन्तानुबंधीका तो उदय होता है किन्तु मिथ्यात्वका उदय नहीं होता अतः आगम प्रमाणसे इसका स्वरूप समझना चाहिए।

कोई जीव सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिश्र गुणस्थानको प्राप्त होता है। इसका काल मध्य अन्तर्मुहूर्त मात्र है इसका भी समय थोड़ा है अतः इसके परिणाम भी केवलज्ञान-गम्य हैं। यहाँ इतना ही मालूम होता है कि जैसे किसी को दी हुई शिक्षा एक ही समय सत्य-असत्य रूप मालूम होती है वैसे ही एक ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समयमें तत्वोंका श्रद्धान और अश्रद्धान भी होता है यह मिश्र-दशा है। इसके तो जिनेन्द्र तथा अन्य देव दोनों ही वंदना-योग्य है इत्यादि मिश्र श्रद्धानको मिश्र गुण-स्थान कहते हैं। लेकिन यह तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्व दशा है। व्यावहारिक रूप देवादिकका श्रद्धान होनेपर मिथ्यात्व रहता है। इस तरह सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टियोंका कथन किया तथा जैन मतवाले मिथ्या दृष्टियोंका वर्णन किया यहाँ अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टियोंका जो वर्णन किया है उसका अभिप्राय इतना ही है कि इन प्रकारोंको पहिचान कर यदि अपनेमें कोई दोष है तो उसको दूरकर सम्यक् श्रद्धानी होना चाहिए। औरोंके ऐसे दोष देख कर कषायी न होना चाहिए क्योंकि अपना भला बुरा तो अपने परिणामोंसे होता है। यदि औरोंकी रुचि देखे तो कुछ उपदेश देकर उनका भी भला करे। अतः अपने परिणाम सुधारना चाहिए। इस तरह सब प्रकारके मिथ्यात्वके भावको छोड़ कर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है। क्योंकि संसारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वके समान अन्य पाप नहीं है।

एक मिथ्यात्व और उसके साथ अनन्तानुबंधीका अभाव होनेपर इकतालीस प्रकृतियोंका बंध ही मिट जाता है। स्थिति अन्तः कोटाकोटी सागरकी रह जाती है। अनुभाग थोड़ा ही रह जाता है। वह शीघ्र ही मोक्ष पदको पाता है। लेकिन मिथ्यात्वका सद्भाव रहनेपर अन्य अनेक उपाय करनेपर भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्ष नहीं होती है इसलिये जैसे बने वैसे सर्वप्रकार मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है। (मोक्षमार्ग प्रकाश)

सम्यक्त्वका स्वरूप

सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शनका स्वरूप यद्यपि अनिर्वचनीय है यानी वचनों द्वारा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ज्ञानके सिवाय आत्माके शेष सभी गुण शब्दोंद्वारा कहे नहीं जा सकते, उन गुणोंका परिज्ञान जो ज्ञानके द्वारा होता है उसी परिज्ञानको शब्दोंको रेखाओंमें खींचनेका यत्न आत्मा किया करता है। अतः जिस तरह आत्मा सुख-दुख आदिको हू-ब-हू किसी भी तरह नहीं बतला सकता। क्योंकि वह तो अनुभव करनेकी चीज है। इसी कारण स्वादिष्ट भोजनके स्वादके वास्तविक आनन्दको अथवा किसी कार्यमें सफल होनेके हर्षको तथा ज्वर, पुत्रवियोग आदिका दुःख ठीक ज्योंका त्यों शब्दोंद्वारा नहीं बतलाया जा सकता। ऐसो ही शब्दोंद्वारा हू-ब-हू न बतला सकनेकी बात सम्यग्दर्शनके स्वरूपके विषयमें है किन्तु फिर भी जिन महान पुरुषोंने अपने त्याग, तप संयमके बल पर सम्यग्दर्शनको प्राप्त किया है उन्होंने उस अनुभवरूप सम्यदर्शनका मोटा स्वरूप शब्दोंद्वारा बतलानेका प्रयत्न किया है।

तदनुसार सम्यग्दर्शनका स्वरूप अनेक प्रकारसे बतलाया है। तत्वार्थ यानी अपने यथार्थ स्वरूप सहित जीव आदि ७ तत्वोंका श्रद्धान (विश्वास) होना सम्यग्दर्शन तत्वार्थसूत्रमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बतलाया है। किसी आचार्यने "अन्य पदार्थोंसे भिन्न अपने आत्माकी रुचि होना" सम्यग्दर्शनका लक्षण किया है। पंचाध्यायीमें 'स्वानुभूति यानी अपने आत्माका अनुभव होना' सम्यग्दर्शन बतलाया है। रत्नकरंडमें सत्यदेवगुरूशास्त्रके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा है।

इन सब भिन्न भिन्न लक्षणोंका उद्देश एक ही है सिर्फ एक ही बातको भिन्न २ शब्दों तथा शैलियों (तरीकों) द्वारा समझाने का ढंग है। सारांश यह है कि जिस समय पीछे बतलाई गई पांच लब्धियोंके हो जाने पर मिथ्यात्व मोहनीय कर्म हट जाता है तब आत्माको अपने स्वरूपका अनुभव होता है जिससे आत्माको आत्मश्रद्धा–आत्मविश्वास अटलरूपसे प्राप्त होती है, संसारकी कोई भी विषय वासना उस आत्मरुचिसे उस आत्मा को विमुख नहीं कर सकती। उस समय वह सम्यग्दर्शनवाला आत्मा संसारसे विमुख होकर अपने वीतराग रूपको ही उपादेय समझता है अतः वीतराग देव, निर्ग्रन्थगुरू, वीतरागका उपदेश ही उसे हितकारक प्रतीत होता है। जीव, अजीव, मोक्ष, संसार आदिका यथार्थ स्वरूप उसे अनुभवमें आजाता है। इस दशामें सम्यग्दर्शनके पूर्वोक्त सभी लक्षण ठीक बैठ जाते हैं।

सम्यग्दर्शनके भेद

सम्यग्दर्शनके भेद भी उत्पत्तिकी अपेक्षा दो (निसर्गज, अधिगमज) तथा सूत्र आदि दस प्रकारके बतलाये हैं तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूपकी अपेक्षा सम्यग्दर्शन तीन प्रकार होता है। औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ (यद्यपि यह कषाय चारित्र मोहनीयकी प्रकृति है और स्वरूपाचरणका घात करती है किन्तु इसकी सत्तामें सम्यग्दर्शन हो नहीं सकता) तथा दर्शन मोहनीय (अनादिमिथ्यादृष्टिके सिर्फ मिथ्यात्व प्रकृति होती है किन्तु सादि मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति, ये तीन तरहका दर्शन मोहनीय होता है) का उपशम हो जानेसे जो आत्माके सम्यग्दर्शन होता है उसको औपशमिक सम्यग्दशन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन अन्तर्मुहूर्त्त (४८ मिनटसे कुछ कम) तक ही रह पाता है।

अनन्तानुबन्धी तथा दर्शनमोहनीय कर्मके क्षय हो जानेपर जो सम्यग्दर्शन होता है वह क्षायिक सम्यग्दर्शन है। क्षायिक सम्यग्दर्शन सदा बना रहता है कभी नष्ट नहीं होता।

अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्वका उदयाभावी क्षय (उदय आते हुए भी अपना असर न करना) तथा सत्तामें उपशम (आत्माके साथ रहते हुए भी अपना असर न दिखाना) और सम्यक् प्रकृतिके उदय होने पर जो मैलासा सम्यग्दर्शन होता है वह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन है। वह अधिकसे अधिक ६६ सागर तक रहता है।

क्षयोपशम सम्यक्त्वका सम्यक् प्रकृतिके उदय होनेपर होता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतएव मोहनीय कर्मकी इस प्रकृतिके कारण सम्यक् श्रद्धामें चल, मल, अगाढ दोष रहे आते हैं। अपने बनवाये हुए देवमंदिरको अपना समझना भगवान शान्तिनाथ तीर्थंकरके पूजनसे शान्ति, भगवान पार्श्वनाथके पूजनसे रोग व्यधिका नाश आदि समझना 'चल' दोष है। जैसे वृद्ध पुरुषके हाथकी लकड़ी एक स्थानपर टिकी हुई भी निर्बल हाथोंके कांपनेसे हिलती रहती है इसी प्रकार सत्यदेव गुरु शास्त्रमें श्रद्धाभाव रहता हुआ भी ढिलमिल सा रहे वह 'अगाढ' दोष है।

शंका (जिन वाणीकी तर्क-अगम्य बातोंमें शंका रखना) कांक्षा (सांसारिक विषयसुखोंकी इच्छा करना), विचिकित्सा (धार्मिक व्यक्तिके मलिन शरीरसे घृणा करना), मूढदृष्टि (सत्य असत्य पदार्थ निर्णयमें अज्ञानी बना रहना), अनुपगूहन (दूसरे के अवगुण तथा अपने गुण प्रकट करना), अस्थितिकरण (किसी कारण अन्य व्यक्ति धर्ममार्गसे हट रहा हो तो उसे धर्ममें स्थिर रखनेका यत्न न करना) अवात्सल्य (धर्मात्मासे प्रेम न करना), अप्रभावना (जैनधर्मका प्रचार प्रभाव करनेका प्रयत्न न करना) ये आठ दोष तथा अपने कुल (पिताका वंश), जाति (माताका पक्ष—ननसाल), रूप (शरीरकी सुन्दरता), बल, धन, व्रत तप, अधिकार (हुकूमत) तथा ज्ञान का अभिमान करना ये आठ मद तथा कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु और उन तीनोंके तीन प्रकारके उपासक इन छहकी प्रशंसा करना ये छह अनायतन एवं लोकमूढ़ता(लोगोंके देखादेखी किसी नदीमें स्नान करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में पुण्य समझ लेना आदि), गुरुमूढ़ता (धार्मिक गुरुकी परीक्षा न करके पाखंडी साधुको भी धार्मिक गुरु मान लेना), देवमूढ़ता (रागद्वेष, अज्ञानसे लिप्तको भी आराध्य देव समझना) ये तीन मूढ़ता, इस तरह (८ दोष, ८ मद, ६ अनायतन, ३ मूढ़ता) २५ मल सम्यग्दर्शन को मैला करने वाले हैं क्षयोपशम सम्यक्त्वमें सम्यक्प्रकृतिका उदय इन मलोंको भी उत्पन्न किया करता है।

निःशंकता (जिनवाणीमें सन्देह न करना), निःकांक्षा (सांसारिक विषय वासनाओंकी अभिलाषा न करना), निर्विचिकित्सा (साधु,व्रतियोंका मलिन शरीर देखकर उनसे घृणा न करना उनके आत्मिक गुणोंसे प्रेम करना), अमूढ़दृष्टि (परमार्थ विषयक देव धर्म तत्व आदिका ज्ञान रखना), उपगूहन (दूसरों के दोष और अपने गुणोंका ढिंढोरा न पीटना), स्थितीकरण (कोई व्यक्ति धर्मपथसे किसी कारणवश चिग रहा हो तो उसे समझा-बुझाकर, उचित सहायता देकर धर्ममें स्थिर कर देना, वात्सल्य (धर्मात्मासे ऐसा प्रेम करना जैसे गाय अपने बछड़े से करती है) और प्रभावना (शंकासमाधान करना ग्रन्थ बाँटना, व्याख्यान देना, दान देना आदि प्रभावशाली कार्योंसे जैनधर्म का प्रभाव फैलाना) सम्यग्दर्शनके ये ८ अंग हैं ।

प्रशम (क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषाय मंद होना शान्त परिणाम), संवेग (संसार से भयभीत तथा धर्ममें अनुराग होना), अनुकम्पा (दीन दुखी जीवों पर दयापरिणाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होना) और आस्तिक्य (पुण्य, पाप, परलोक, मोक्ष आदिकी मान्यता) ये चार बातें सम्यग्-दृष्टि के बाहरी चिन्ह हैं।

सम्यग्दर्शनका महत्व

जिस जीवको एक बार सम्यग्दर्शन होजाय वह उसी भवसे अथवा अन्य किसी भवसे मुक्त अवश्य होता है क्षायिकसम्यक्-दृष्टी तो नियमसे अधिकसे अधिक तीसरे भवमें संसारसे पार हो जाता है। सम्यग्दृष्टी यदि कारणवश कोई व्रत संयम नहीं ग्रहण करता है फिर भी वह सांसारिक—गृहस्थी कार्य करता हुआ भी अंतरंग में उनसे विरक्त रहता है उनमें लीन नहीं होता जैसे धाय दूसरेके बच्चेका पालनपोषण करती हुई भी उसे अपना नहीं समझती अथवा जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ भी सोना मैला नहीं हो पाता या जैसे पानीमें रहते भी कमलपत्र पानीसे अलिप्त ही रहता है इसी तरह लाचारी से संसारी काम करता हुए भी सम्यग्दृष्टि उनमें मग्न नहीं हो पाता।

सम्यग्दृष्टि निम्नलिखित शरीर नहीं पाता। दूसरे नरकसे सातवें नरक तक एकेन्द्रियसे असैनी पंचेन्द्रिय तक, समस्त स्त्री,नपुंसक, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा चारों तरहकी देवीका शरीर नहीं पाता।

सम्यग्दर्शनके होने पर ही ज्ञान और चारित्र आत्माका कल्याण करनेवाले सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होते हैं। इस कारण सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना सबसे बड़ा प्रशंसनीय उद्योग है।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री जैनसिद्धान्त ग्रन्थमाला

पहाड़ीधीरज, देहली।

इस ग्रन्थमाला के

संरक्षक २५१) एक मुश्त प्रदान करनेवाले महानुभाव होंगे।

विशेष सहायक १०१) एक मुश्त प्रदान करनेवाले महानुभाव होंगे।

सहायक ५१) एक मुश्त प्रदान करनेवाले महानुभाव होंगे।

आजीवन सदस्य २५) एक मुश्त प्रदान करनेवाले महानुभाव

इन सब महानुभावोंको नामावली ग्रन्थमालासे प्रकाशित प्रत्येक पुस्तकमें प्रकाशित होती रहेगी।

[इसके सिवाय जो महानुभाव उपरोक्त रकम से कम की सहायता देंगे अथवा अपनी ओर से कोई पुस्तक छपाकर ग्रन्थमाला को भेंट करना चाहेंगे वह भी सहर्ष स्वीकार की जावेगी।]

संरक्षक—

विशेष सहायक—

ला० पदमचन्द्र शिखरचन्द्र जी

ला० कुञ्जलाल कुन्दनलाल जी

सहायक—

ला० निरञ्जनदास वैजनाथ जी

ला० विश्वम्भरदास एण्ड सन्स

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आजीवन सदस्य—

ला० बुद्धूमल प्रेमचन्द्रजी
ला० तुल्लनमलजी
डा० फूलचन्द्रजी
ला० मनोहरलाल मोतीलालजी जौहरी
ला० प्यारेलाल जगन्नाथ जी
ला० न्यादरमल गोविंदप्रसादजी
ला० बाबूराम हीरालाल जी
ला० मोहनलाल श्रीपाल जी
ला० हजारीलाल सुलतानसिंहजी
ला० हेमचन्द्र नेमचन्द्र जी कलकत्ते वाले
ला० पोहकरमल जी
ला० नन्हेमल नेमचन्द्रजी
जैन कम्पनी सूतवाले
ला० मंगतरायजी स्याद्वादी
ला० भोलारामजी ऋषभदासजी
मोती ब्रादर्स आगरेवाले
ला० इद्रमल जो
मुन्शी उमरावसिंह महावीर-प्रसाद जी
ला० वशेश्वरनाथजी रोहतकी
ला० फूलचन्द्रजी पाटनी
वैद्य शीतलप्रसाद महावीर-प्रसादजी
ला० बसंतलाल ललिताप्रसादजी
बा० प्रकाशचन्द्र कैलाशचन्द्रजी
ला० करमचन्द्रजो
ला० खुशीराम चन्दूमलजी पानीपत वाले
ला० कश्मीरीलाल सांवलसिंहजी
ला० जयनारायनजी पानीपतवाले
ला० लालचन्दजी साइकिल वाले
ला० चुन्नीलाल मदनलालजी
ला० जियालाल अजितप्रसादजी
ला० चौथराम जयकुमारजी मुलतान वाले
बुद्धामल रामजीलाल फीरोजपुर
स्त्रीसमाज डिप्टीगंज
श्रीमती रामप्यारीजी हैड मिस्ट्रेस
श्रीमती गेणोशीबाईजी मुलतान वाली
धर्मपत्नी ला० मट्टोमलजी
„ डा० चन्द्रभानजी
„ ला० अतरसेनजी
„ ला० मोतीलालजी
„ ला० रामचन्द्रजी
„ ला० गिरधारीलालजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री ... दि. जैन (शोध) संस्थान ... वाराणसी

आवश्यक सूचनाएं

१ ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित प्रत्येक ग्रन्थकी संरक्षकोंको १०७, विशेष सहायकोंको ४, सहायकोंको २ तथा आजीवन सदस्यों को १ प्रति भेंट की जायगी।

२ ग्रन्थोंकी बिक्रीसे जो रुपया आवेगा वह आगे ग्रन्थोंके प्रकाशनमें ही लगाया जायगा।

३ ग्रन्थमालाका दूसरा अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंहजी महाराज द्वारा लिखित "अध्यात्म-प्रवेशिका" भी छपकर तैयार है और शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

आप लोग अधिकसे अधिक संख्या में इस ग्रन्थमालाके संरक्षक, विशेषसहायक, सहायक तथा आजीवन सदस्य बनकर उपयोगी ग्रन्थों के प्रकाशन और धर्म-प्रचारमें पूर्ण सहायता दीजिये।

कृपया ग्रन्थमाला सम्बन्धी पत्र-व्यवहार निम्न पते पर कीजिये :—

(डा०) फूलचन्द जैन,
मंत्री, श्री जैन-सिद्धान्त-ग्रन्थमाला
पहाड़ीधीरज, देहली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थमाला का दूसरा अनुपम पुष्प

अध्यात्म-प्रवेशिका

अनेक ग्रन्थों के लेखक श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंह जी महाराज ने इस ग्रन्थ में प्रश्नोत्तर रूप में अध्यात्म-सम्बन्धी गहन बातों का बड़ी सरल और सुबोधभाषा में विवेचन किया है। एक वार अवश्य पढ़िये।

पृष्ठ लगभग २०० मूल्य ॥।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi